परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

❊ जन्मदिवस 19–03–1971 ❊ मुनिदीक्षा–11–05–1989 ❊ आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणाः–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

जैनागमों में परमात्मवाद

लेखक
श्री आत्माराम जी महाराज

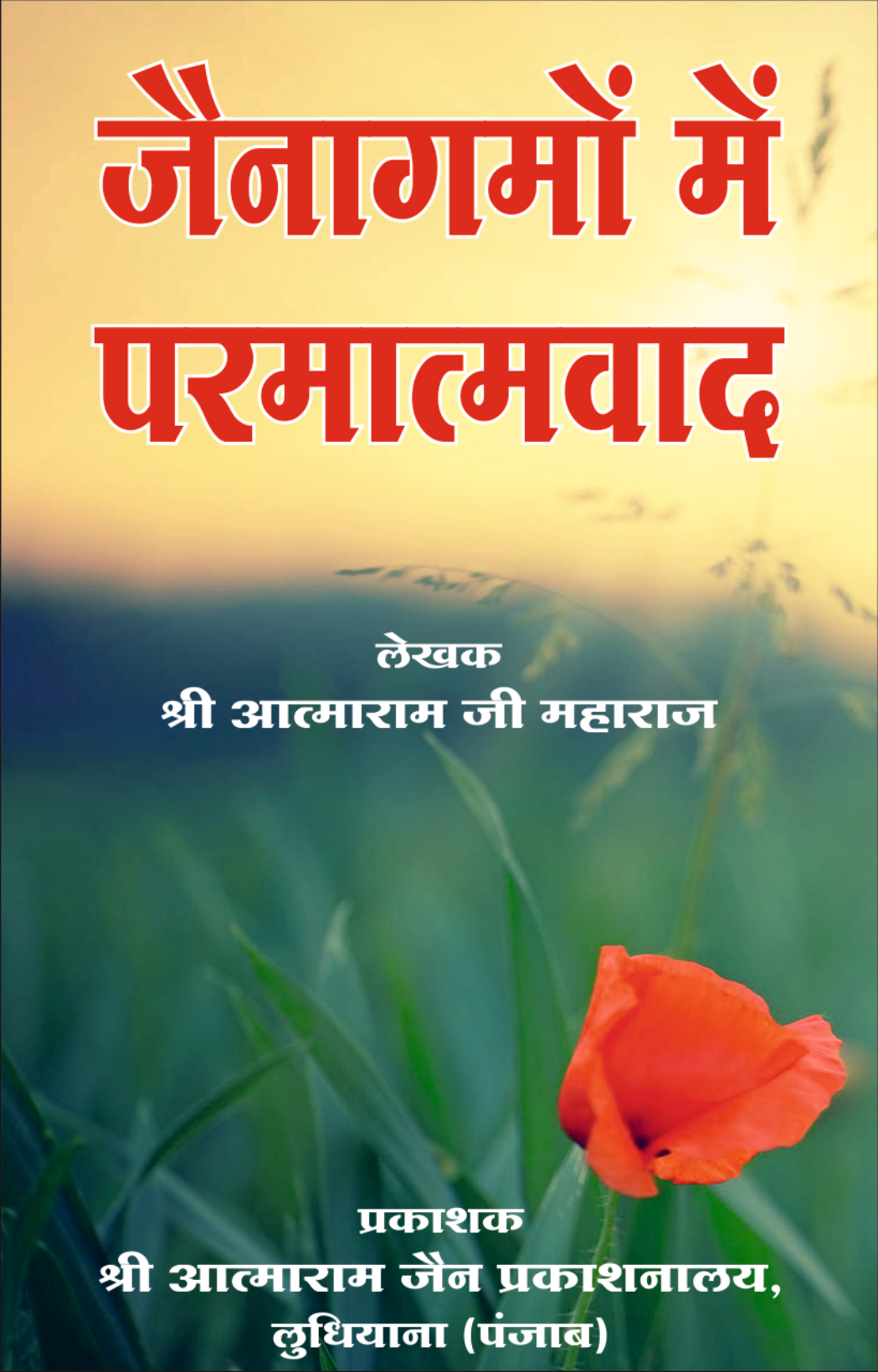

प्रकाशक
श्री आत्माराम जैन प्रकाशनालय,
लुधियाना (पंजाब)

(परम्परानायक)

परम पूज्य चारित्र-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त-शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

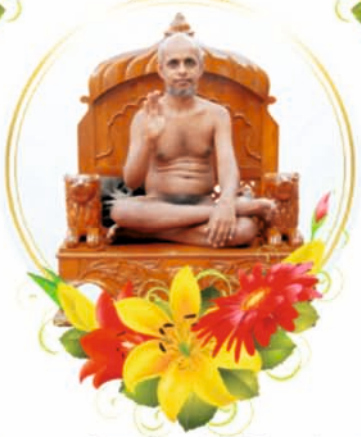

परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि-परिवार

जैनागमों में परमात्मवाद

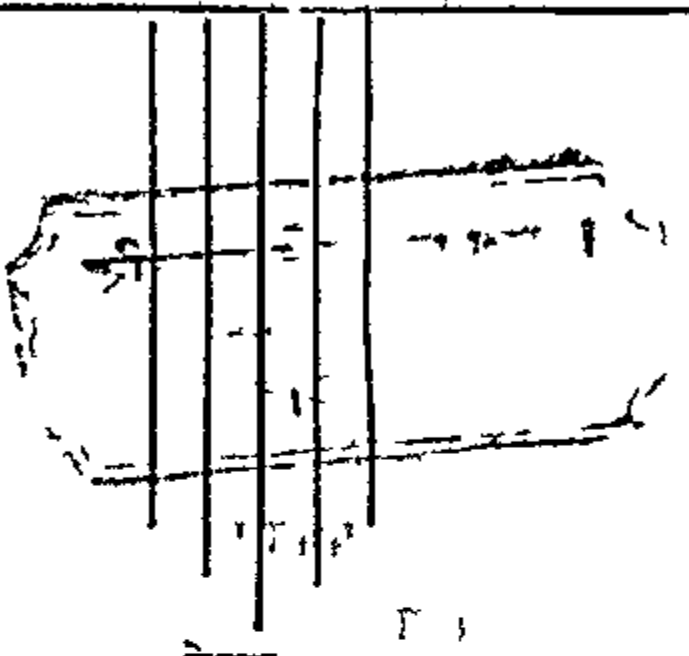

लेखक—
जनधर्मदिवाकर, साहित्यरत्न, जैनागमरत्नाकर,
आचार्यसम्राट परम श्रद्धेय
पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज

प्रकाशक—
आचार्य श्री आत्माराम जैन प्रकाशनालय
जनस्थानक, लुधियाना।

प्राप्तिस्थान—
आचार्य श्री आत्माराम जैन प्रकाशनालय,
जैनस्थानक, लुधियाना

प्रथम प्रवेश

वीरसम्वत्	२४८६
वि० स०	२०१६
मूल्य	आठ आना

मुद्रक—
राईज़ आट इलक्ट्रिक प्रेस,
गली लालूमल, लुधियाना।

धन्यवाद

जैनागमा म परमात्मवाद' के प्रकाशन में समस्त व्यय करन की उदारता श्रीमती गौरा दवी जी कर रही हैं। माता श्रा गौरा दवी जी यह प्रकाशन अपन पूज्य पतिदेव—

स्वर्गीय लाला नौहरियामल जी जन

की पुण्यस्मृति म करवा रही हैं। लाला नौहरियामल जा धार्मिक विचारा के व्यक्ति थ। लाला जी का यह धार्मिक भावना जनयमदिवाकर आचायसम्राट् पूज्य श्री आत्माराम जा महाराज जा क मुख्यि युगस्पटा श्रद्धय श्रा स्वामा ज्ञानचन्द्र जी महाराज के परमानुग्रह स प्राप्त हुई थी। श्रद्धय महाराज जी का कृपा स हा लाला जा का जनधम की उपलब्धि हुई था। उन्हीं की कपा स लाला जा सामायिक, नियनियम का सदा ध्यान रखा करत थ। धार्मिक सामाजिक और साहित्यिक कार्यों म अपन धन का सदा उपयाग करत रहते थ। श्रा रामप्रसाद जी, श्रा गावधनदास जा श्री कदारनाथ जी लाला जी क सुयाग्य पुत्र हैं। इन म जा धार्मिकता तथा सामाजिकता दृष्टिगाचर हा रही है, वह सब लाला जी क पुण्य प्रताप का ही मधुर फल है।

माता श्रा गौरा देवी जा बडा उदार प्रकति की देवी हैं। धमध्यान की इन को अच्छी लग्न है। दानपुण्य म सदा अपन धन का सदुपयाग करता रहती है। दा वप हुए, यागनिष्ठ श्रद्धेय श्री स्वामी फूलचन्द्र जी महाराज द्वारा लिख नयवाद का प्रकाशन इन्होंने ही करवाया था। आचायसम्राट् पूज्य श्री

आत्माराम जी महाराज द्वारा विनिर्मित 'जैनागमों में परमात्मवाद' का प्रकाशन भी आप ही करवा रही हैं। आप की इस उदारता के लिए मैं आप का धन्यवाद करता हूं। और आशा करता हूं कि भविष्य में भी आप इसी भांति साहित्यिक सत्कार्यों में अपने धन का सदुपयोग करती रहेंगी।

भवदीय—

मन्त्री—

आचार्य श्री आत्माराम जैन प्रकाशनालय,

जैनस्थानक, लुधियाना।

दिग्दर्शन

वदिक-परम्परा मे ईश्वर शब्द—

ईश्वर शब्द वदिक दशन का अपना एक पारिभापिक शब्द है । वदिक दर्शन क अनुसार उस महाशक्ति का नाम ईश्वर है जा इस जगत का निर्मात्री है एक है सवव्यापक और नित्य है । वदिक दशन का विश्वास है कि ससार के कायचक्र का चलान की वागडार ईश्वर के हाथ म है ससार के समस्त स्पन्दन उसी की प्ररणा से हो रहे हैं ।

वदिक दर्शन कहता है कि ईश्वर सवशक्तिमान है वह जा चाह कर सकता है।*कतव्य का अकर्तव्य और अकतव्य का कतव्य वना देना उस के वाए हाथ का काम है । सारा ससार उस की इच्छा का खेल है उसकी इच्छा के विना एक पत्ता भी नही कम्पित हो सकता । ससार का उत्थान और पतन उसी के इशारे पर हो रहा है ।

वदिक दशन की आस्था है कि अज्ञ ज्ञान के कारण जीव अपन सुख और दु ख का स्वय स्वामी नही है †इस का स्वग या नरक जाना ईश्वर की इच्छा पर निभर है । मनुष्य कुछ नहा कर सकता । उस तो स्वय को ईश्वर क हाथा म सौप

---

* कतुमकतुमन्यथा कतु समथ ईश्वर ।

† अज्ञा जन्तुरनीशोऽयमात्मन सुखदु खयो ।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत्, स्वग वा श्वभ्रमेव वा ॥

(महाभारत)

देना चाहिए ईश्वर की कृपा ही उसकी बिगडी बना सकती है।

वदिक दर्शन का कहना है कि भक्त ईश्वर की कितनी भक्ति कर ले उपासना करले कितना ही उसका गुणानुवाद करले, पर भक्त भक्त रहेगा और ईश्वर ईश्वर। भक्ति पूजा जप, तप त्याग वराग्य आदि किसी भी प्रकार के अनुष्ठान के आराधना से भक्त ईश्वर नही बन सकता है। ईश्वर और भक्त के बीच म जो भेद-मूलक फौलादी दीवार खडी है वह कभी समाप्त नहीं हो सकती है।

इस के अलावा वदिक दर्शन विश्वास रखता है कि संसार म जब अधर्म बढ जाता है धर्म की भावनाए दुर्बल हो जाती हैं पाप सर्वत्र अपना शासन जमा लेता है तो पापियों का नाश करने के लिए तथा धर्म की स्थापना करने के लिए ईश्वर अवतार धारण करता है। मनुष्य पशु आदि किसी न किसी रूप मे जन्म धारण करता है। यह वदिक दर्शन के ईश्वर के स्वरूप का संक्षिप्त परिचय है।

जन-परम्परा और ईश्वर शब्द—

जन साहित्य का परिशीलन करने से पता चलता है कि उस म परमात्मा के अर्थ मे ईश्वर शब्द का कहीं प्रयोग नहीं नहीं मिलता है। जनदर्शन में परमात्मा के लिए सिद्ध बुद्ध अजर अमर सर्वज्ञ सम्प्रहीण निरजन, मुक्तात्मा आदि शब्दों का व्यवहार मिलता है। जन दर्शन की दृष्टि से ये समस्त शब्द पर्यायवाची है, सामान्यतया एक ही अर्थ के वाचक ह। मुक्तात्मा के स्वरूप का विवेचन करते हुए भगवान महावीर ने श्री आचाराग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के पञ्चम अध्ययन के

छठ उद्देशक म फरमाया है—

मुक्त आत्मा का स्वरूप प्रतिपादन करने म समस्त शब्द हार मान जाते हैं यहा तक का प्रवेश नही होता है । बुद्धि उसे अवगाहन नहीं करती है । वह मुक्तात्मा प्रकाश-स्वरूप है । वह समग्र ज्ञाता माना है । वह न लम्बा है न छोटा है न गोल है (गेंद के आकार का नहीं है) न तिकोना है न चतुष्कोण है और न परिमण्डल है (वलय चूडी के आकार का नही है)–उस मुक्तात्मा की इन मे से कोई आकृति नही है । वह न काला है न नीला है न लाल है न पीला है और न शुक्ल है—उसका कोई रूप नहीं है । वह न सुगन्ध वाला है न दुर्गन्ध वाला है–उस म कोई गध नही है । वह न तीक्ष्ण (तीखा) है न कटुक है न कसायला है न खट्टा है और न मीठा है—उस मे कोई रस नही है । वह न कर्कश है, न मृदु है न भारी है न हलका है न ठण्डा है न गरम है न स्निग्ध है और न रूक्ष है—उस म कोई स्पर्श नहीं है । वह मुक्तात्मा शरीर-रूप नहा है । वह जन्म मरण के मार्ग को सर्वथा पार कर चुका है । वह अनासक्त है आसक्ति वाला नहा है । वह न स्त्री रूप है न पुरुष रूप है न अन्यथा रूप है अर्थात् न नपुसक रूप है और अवेद है-वेद रहित है । वह समस्त पदार्थों का सामान्य और विशेष रूप मे ज्ञाता है । उसे समझाने के लिए कोई उपमा नही है वह अरूपी सत्ता है–रूप रहित सत्ता वाला है । उस अनिर्वचनीय का किसी वचन के द्वारा नही कहा जा सकता है । वह शब्द रूप गध रस और स्पर्श स्वरूप नहीं है । शब्द के द्वारा वाच्य (जिस के लिए शब्द का प्रयोग किया जाता है)यही पदार्थ होते हैं परन्तु मुक्तात्मा इन में से कुछ नहीं है, अत वह अवक्तव्य है ।

जैनदर्शन में मुक्तात्मा के अर्थ में ईश्वर शब्द का व्यवहार नहीं किया जाता है तथा जैनदर्शन वैदिकदर्शन द्वारा मान गए ईश्वर का ईश्वरत्व (जगत्कर्तृत्व आदि) भी स्वीकार नहीं करता है। जैनदर्शन का विश्वास है कि परमात्मा सत्यस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है, आनंदस्वरूप है वीतराग है, सर्वज्ञ है सर्वदर्शी है। परमात्मा का दृश्य या अदृश्य जगत में प्रत्यक्ष या परोक्ष कोई हस्तक्षेप नहीं है वह जगत का निर्माता नहीं है, भाग्य का विधाता नहीं है, कर्म फल का प्रदाता नहीं है तथा अवतार लेकर वह संसार में आता भी नहीं है।

जैनदर्शन कहता है कि व्यक्ति की अपेक्षा से परमात्मा एक नहीं है अनन्त जीव परमात्मपद प्राप्त कर चुके है। परमात्मा अनादि नहीं है। परमात्मा को अनादि न मानने का इतना ही अभिप्राय है कि जीव कर्मों का क्षय करने के अनन्तर ही परमात्मपद पाता है। परमात्मा एक जीव की दृष्टि से सादि अनन्त है अनादि काल से जीव मुक्त हो रहे हैं, और अनन्त काल तक जीव मुक्त होते रहेंगे इस दृष्टि से परमात्मा अनादि अनन्त भी है। परमात्मा आत्मप्रदेशों की दृष्टि से सर्वव्यापक नहीं है। उसके आत्मप्रदेश सीमित प्रदेश में अवस्थित हैं किन्तु उसके ज्ञान से सारा संसार आभासित हो रहा है इस दृष्टि से (ज्ञान की दृष्टि से) उसे सर्वव्यापक भी कह सकते हैं। संसार के धंधे में उसका कोई हस्तक्षेप नहीं है। जीव को कर्म करने में किसी सर्वथा स्वतन्त्र है परमात्मा जीव को कर्म करने में किसी भी प्रकार की कोई प्रेरणा प्रदान नहीं करता है। उसे किसी कर्म के करने से वह निषिद्ध भी नहीं करता। जीव जो कर्म करता है, उसका फल जीव को स्वतः ही मिल जाता है। आत्म प्रदेशों से सम्बन्धित कर्म-परमाणु ही कर्म-कर्ता जीव को स्वयं अपना फल दे डालते हैं। मदिरा मदिरासेवी व्यक्ति पर जैसे

स्वय हा अपना प्रभाव डाल दती है वसे हो कम-परमाणु जाव का स्वत ही अपन प्रभाव स प्रभावित कर डालत है। परमात्मा का उसके साथ प्रत्यक्ष या परोक्ष काई सम्बन्ध नही है। कमफल पाने के लिए जोव का परमात्मा क द्वार नहा खटखटान पडत हैं। जाव सवथा स्वतत्र है किसो भो दृष्टि स वह परमात्मा के अधीन नही है। सक्षप म कह सकते हैं—

राम किसी को मारे नही, मार सो नही राम।
आप ही आप मर जायेगा, करके खोटा काम॥

जनदशन को आम्था है कि जीव अपन भाग्य का स्वय निमाता है, स्वग नरक मनुष्य की सद असद प्रवत्तिया का परिणाम है। अपनी नय्या का पार करने वाला भी जीव स्वय हा है और उस डुबोन वाला भो वह स्वय हा है। इस मे परमात्मा का काई सम्बन्ध नही ह।

ऊपर की पक्तिया मे यह स्पष्ट हो गया है कि ईश्वर शब्द वदिक दशन का अपना एक पारिभाषिक शब्द है जनदशन म उस क लिए काई स्थान नही है। वदिकदशन म ईश्वर शब्द की जा पग्भिाषा व्यक्त की गइ है जैनदशन उस पर काई आस्था नही रखता है। जनदशन तो सर्वोत्तम और सवथा निष्कम दशा को प्राप्त आत्मा का ही परमात्मा या सिद्ध या बुद्ध आदि शब्दों क द्वारा प्रकट करता है। ऐसी निष्कम आत्मा को वह वदिक सम्मत ईश्वर क नाम से कभा व्यवहृत नही करता है।

ईश्वर शब्द को व्यापकता—

ईश्वर शब्द की ऐतिहासिक अथविचारणा पर करत हुए मालूम होता है कि वदिकदशन क

ईश्वर शब्द एक विशेष अर्थ में रूढ़ था। उस समय जगत कर्तृत्व आदि विविध शक्तियों की धारक महाशक्ति को ही ईश्वर के नाम से व्यवहृत किया जाता था, किन्तु अन्तिम कुछ शताब्दियों से ईश्वर शब्द सामान्यतया परमात्मा का निर्देशक बन गया है। ईश्वर शब्द का उच्चारण करते ही मनुष्य को सामान्य रूप से परमात्मा का बोध होता है। आज ईश्वर के उच्चारण करने पर जगत की निर्मात्री, भाग्यविधात्री, कर्मफलप्रदात्री तथा अवतार ग्रहित्री किसी शक्ति विशेष का बोध नहीं होता है। ईश्वर एक है सर्व-व्यापक है, नित्य है, आदि बातों का भी आज ईश्वर शब्द परिचायक नहीं रहा है। आज तो ईश्वर शब्द सीधा परमात्मा का निर्देश करवाता है। फिर चाहे कोई उसे किसी भी रूप में स्वीकार करता हो। ईश्वर शब्द सामान्य रूप से परमात्मा का निर्देशक होने के कारण ही आजसर्वप्रिय बन गया है। आत्मवादी सभी दर्शनों ने ईश्वर शब्द को अपना लिया है आत्मवादी सभी दर्शन ईश्वर को आदरास्पद स्वीकार करते हैं। जैनदर्शन जो सदा अनीश्वरवादी कहा जाता रहा है और जिस ने ईश्वर शब्द को कभी अपनाया ही नहीं है। तथापि आज उस के अनुयायी सहज ईश्वर का नाम लेते हैं अपने को ईश्वरवादी कहने में जरा संकोच नहीं करते हैं। कारण स्पष्ट है कि ईश्वर शब्द आज वैदिकदर्शन का पारिभाषिक शब्द नहीं समझा जाता है। अब तो सामान्य रूप से वह परमात्मा का सिद्ध का बुद्ध का निर्देशक बन गया है। आज ईश्वर, परमात्मा सिद्ध बुद्ध गाड (God), खुदा आदि सभी शब्द समानार्थक समझे जाते हैं। सैद्धान्तिक और साम्प्रदायिक दृष्टि से इन शब्दों के पीछे

किसी का कोई भी पारिभाषिक अभिमत रह रहा हो किन्तु जनसाधारण इन समस्त शब्दों से सामान्यतया परमात्मा का ही बोध प्राप्त करता है।

ईश्वर के तीन रूप—

ऊपर की पंक्तियों में स्पष्ट कर दिया गया है कि वैदिक दर्शन व सांख्यदर्शन में ईश्वर शब्द एक विशिष्ट और पारिभाषिक अर्थ का बोधक रहा है किन्तु अन्तिम शताब्दियों में इस का वह रूप परिवर्तित हो गया है। अब तो यह सामान्यतया परमात्मा का निर्देशक है। आज सभी आत्मवादी दर्शन ईश्वर को मानते हैं। कोई आत्मवादी दर्शन ईश्वर की सत्ता से इन्कार नहीं करता है। सभी इस सत्य को स्वीकार करते हैं।

सामान्य रूप से सभी आत्मवादी दर्शन ईश्वर को मानते हैं किन्तु सैद्धान्तिक और साम्प्रदायिक दृष्टि से ईश्वर-सम्बन्धी गुणों में थोड़ा थोड़ा मतभेद रखते हैं। इसी मतभेद को लेकर आज ईश्वर के सम्बन्ध में तीन विचार धाराएं उपलब्ध होती हैं। वे तीनों विचारधाराएं संक्षेप में इस प्रकार हैं—

१—ईश्वर एक है, अनादि है, सर्वव्यापक है, सच्चिदानन्द है, घट घट का वासी है, सर्वशक्तिमान है, जगत का निर्माता है, भाग्य का विधाता है, कर्मफल का प्रदाता है। संसार में जो कुछ होता है, वह सब ईश्वर के संकेत से होता है। ईश्वर पापियों का नाश करने के लिए तथा धार्मिक लोगों का उद्धार करने के लिए कभी न कभी, किसी न किसी रूप में संसार में जन्म लेता है, वैकुण्ठ से नीचे उतरता है और अपनी लीला दिखा कर वापिस वैकुण्ठ धाम में आ विराजता है।

ईश्वर का यह एक रूप है, जिसे आज हमारे सनातनधर्मी

भाई मानते हैं। ईश्वर का दूसरा रूप नीचे की पंक्तियों में पढ़िए—

२—ईश्वर एक है, अनादि है, सर्वव्यापक है, सच्चिदानन्द है, घट घट का ज्ञाता है सर्वशक्तिमान है, संसार का निर्माता है। जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है उस में ईश्वर का कोई हस्तक्षेप नहीं है। जीव अच्छा या बुरा जैसा भी कर्म करना चाहे कर सकता है, यह उस की इच्छा की बात है, ईश्वर का उस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है किन्तु जीवों को उन के कर्मों का फल ईश्वर देता है। अपनी लीला दिखाने के लिए, पापियों का नाश करने के लिए और धर्मियों का उद्धार करने के लिए ईश्वर अवतार धारण नहीं करता है भगवान से मनुष्य या पशु के रूप में जन्म नहीं लेता है।

ईश्वर का यह दूसरा रूप है, जिसे आज कल हमारे आर्य भाई मानते हैं। ईश्वर का तीसरा रूप भी समझ लीजिए—

३—ईश्वर एक ही नहीं है ईश्वर अनेक भी है, अनादि ही नहीं है सर्वव्यापक ही नहीं है, अनन्त शक्तिमान है घट घट का ज्ञाता है, द्रष्टा है जगत का निर्माता नहीं भाग्य का विधाता नहीं, कर्मफल का प्रदाता नहीं, अवतार लेकर संसार में आता नहीं जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है जीवकृत कर्म के साथ ईश्वर का प्रत्यक्ष या परोक्ष कोई सम्बन्ध नहीं है। जीव की उन्नति या अवनति में ईश्वर का कोई हस्तक्षेप नहीं है अहिंसा संयम और तप की त्रिवेणी में विशुद्ध मनसा वाचा और कर्मणा गोता लगाने वाला व्यक्ति निष्कर्मता को प्राप्त करके ईश्वर बन जाता है। ईश्वर और जीव में केवल कर्म गत अन्तर है। कर्म की दीवार यदि मध्य में से उठा दी जाए तो जीव में और ईश्वर में

रवम्‍त क्त वाई अतर नही रहता है जीव ईश्वर-स्वरूप ही बन जाता है।

यह ईश्वर का तीसरा रूप है जिसे जन लोग स्वीकार करते हैं। जना की ईश्वर-सम्बधी मायता के सम्बध म पीछे भा वणन किया जा चका है।

ईश्वर के सम्बध मे अय अनेका रूप भी मिल जाते हैं। कितु मुख्य रूप म आज इन तीनो रूपा का ही अधिक प्रचार एव प्रसार देखने म आता है। इसलिए यहा इन तीना का ही सक्षिप्त परिचय कराया गया है।

जनागमो मे परमात्मवाद—

आरभ म कहा जा चका है कि जनदशन मे परमात्मा के अथ म ईश्वर शब्द का व्यवहार दखने नही आता है। परमात्मा के लिए जनदशन मे सिद्ध बुद्ध आदि पदा का प्रयोग मिलता है। अब यहा कई एक प्रश्न हमारे सामने आते हैं कि जनदशन म सिद्ध बुद्ध आदि पदा का प्रयोग किस किस रूप म पाया जाता है? और कहा-कहा पाया जाता है? तथा जनदशन परमात्मा का एक कहता है या अनक? सादि बतलाता है या अनादि? इन प्रश्नाका तथा इस प्रकारके अय प्रश्नोका समाधान प्राप्त करने के लिए हमे जनागम-सागर का मथन करना होगा। जनागमा का गभीर चिन्तन मनन निदिध्यासन किए बिना उक्त प्रश्ना का समाधान प्राप्त हाना कठिन है। पर यह काम बच्चा का खेल नही है। इस के लिए प्रतिभा चाहिए और जनागमा का सम्यक्तया परिज्ञान होना चाहिए। जिस को जनागमा का पर्याप्त बोध हा उनके पूर्वापर सम्बधों की पूणतया जानकारी हा तथा उन मे निराबाध गति से जो

विहरण कर सकता हो ऐसा कोई आगम मर्मज्ञ महापुरुष ही इन प्रश्नों का समाधान कर सकता है। जनसाधारण के वश का यह काम नहीं है।

जैन समाज में आगममहारथी महा पुरुषों की कमी नहीं है। जैनागमों के मर्म को समझने वाले तथा उस के महासागर के तल का स्पर्श करने वाले समाज में आज भी अनेकों पूज्य मुनिराज हैं। किन्तु मालूम होता है कि इस सम्बन्ध में उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया। यही कारण है कि आज तक किसी ऐसी पुस्तक की रचना नहीं हो सकी है जिस में परमात्मसम्बन्धी आगम-पाठों का संकलन किया गया हो। बस ऐसी पुस्तक होनी अवश्य चाहिए। जैनागमों में जहां-जहां परमात्मा का वर्णन आता है जिन शब्दों तथा जिस रूप में वह वर्णन किया गया है उस सब का संकलन किसी पुस्तक में अवश्य हो जाना चाहिए। तभी जैनागमों में वर्णित परमात्म स्वरूप का जनसाधारण को बोध प्राप्त हो सकता है।

आगमों में यत्र-तत्र आए हुए परमात्मसम्बन्धी पाठों का संकलन होना चाहिए ऐसा संकल्प तो जिज्ञासु पाठकों के हृदयों में वर्षों से चक्र लगा रहा है किन्तु उसे पूरा करने का किसी ने प्रयास नहीं किया। मुझे हार्दिक हर्ष होता है यह बताते हुए कि हमारे श्रद्धेय आचार्य सम्राट श्री जी ने इस दिशा में प्रयत्न करके उस संकल्प को आज पूरा कर दिया है। आचार्य श्री ने अपने अनवरत स्वाध्याय के बल पर आगमों से प्रायः वे सभी पाठ संकलित कर लिये हैं जिन में परमात्मवाद को ले कर कुछ न कुछ कहा गया है उसके स्वरूप को लेकर चिन्तन किया गया है। उन पाठों का संकलित रूप ही आज हमारे सामने

' जनागमा म परमात्मवाद यह पुस्तिका ह । इस पुस्तिका म परमात्मसम्बन्धी प्राय सभी पाठा को सग्रहीत कर लिया गया है ।

जनागमा म परमात्मवाद' मे सवप्रथम शास्त्राय पाठ ह फिर टिप्पणा म उसकी सस्कत च्छाया है । तदनन्तर उस पाठ की सस्कत-व्याख्या है । तत्पश्चात उसका हिन्दा म भावाथ है । मूलपाठ दखना वाल को इस मे मूलपाठ मिलेगा । जा सस्कत भाषा के विद्वान मूलपाठ के गभार हाद का सस्कत भाषा मे जानने की रुचि रखते है उनके लिए मूलपाठ की सस्कत-व्याख्या का इसमे सयोजन किया गया है । जो हिन्दा म उसे समझना चाहत हैं उन के लिए हिन्दी भाषा मे उन पाठो का अनुवाद कर दिया गया है । इस प्रकार इस पुस्तिका को प्रत्यक दृष्टि से उपयोगी और लोकप्रिय बनाने का स्तुत्य प्रयास किया गया है । इस का सभी श्रेय हमार श्रद्धेय गुरुदेव जन धम दिवाकर आचाय-सम्राट पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज का हा है । इन्ही क अनवरत परिश्रम का यह सुफल है । शारीरिक स्वास्थ्य ठीक न रहत हुए भी आचाय श्री न साहित्य-सेवा म अपना यह योगदान दिया है इस के लिए साहित्यजगत आचाय श्री का सदा के लिए ऋणी रहेगा ।

ईश्वर सम्बन्धी हिन्दी साहित्य म इस पुस्तक की अपनी विशिष्टि उपयोगिता है । जा व्यक्ति जानना चाहते है कि जनागमा म परमात्मा के सम्बन्ध म कसा निरूपण किया गया है? और किन किन शब्दा म किया गया है? उनको इस पुस्तक म पयाप्त सामग्री मिलेगी । और जो लोग यह कहते चल रहे हैं कि जनदशन परमात्मा की सत्ता स इनकार

या उसके सम्बन्ध में सर्वथा मौन है उन लोगों को भी इस पुस्तक में समुचित समाधान मिल जायेगा इस पुस्तक के अध्ययन से उन को पता चल जायेगा कि जैनधर्म परमात्मा की सत्ता को महत्व स्वीकार करता है और प्रामाणिकता के साथ परमात्मा के स्वरूप का प्रतिपादन करता है। इस तरह यह पुस्तक साहित्य जगत में महान उपलब्धि, सिद्धावह प्रमाणित होगी यह मैं दृढता के साथ कह सकता हूं।

परमश्रद्धेय आचार्य सम्राट श्री के हम आभारी हैं जो शारीरिक दुर्बलता के रहते हुए भी साहित्य-सेवा के पुनीत कार्य को चालू रख रहे हैं। अबतक आचार्य श्री लगभग ६० पुस्तकें लिख चुके हैं। नेत्र ज्योति की मंदता तथा एक कम अस्सी वर्षों की वयोवृद्ध अवस्था हो जाने पर आज भी श्रद्धेय आचार्य देव इस पुनीत साहित्य-कार्य से विश्राम नहीं ले रहे हैं। अवसर निकालकर इस कार्य को करते ही रहते हैं। प्रस्तुत पुस्तिका भी आचार्य-देव की इसी लगन का सुपरिणाम है। आचार्य-देव की इस साहित्यप्रियता कर्मठता और दयालुता के लिए जितना भी उनका आभार प्रकट किया जाय उतना ही कम है।

जैनस्थानक लुधियाना
कार्तिक पूर्णिमा १५ नवम्बर २०१६

—ज्ञानमुनि

जैनागमों में परमात्मवाद

* मङ्गलाचरणम् *

अमूर्तस्य चिदानन्दरूपस्य परमात्मनः ।
निरञ्जनस्य सिद्धस्य ध्यानं स्याद्रूपवर्जितम् ॥
इत्यजस्रं स्मरन् योगी तत्स्वरूपावलम्बनः ।
तन्मयत्वमवाप्नोति, ग्राह्यग्राहकवर्जितम् ॥
अनन्यशरणीभूय स तस्मिन् लीयते तथा ।
ध्यातृध्यानोभयाभावे ध्येयेनैक्यं यथा व्रजेत् ॥
सोऽयं समरसीभावस्तदेकीकरणं मतम् ।
आत्मा यदपृथक्त्वेन, लीयते परमात्मनि ॥
अलक्ष्यं लक्ष्य-सम्बन्धात् स्थूलात्सूक्ष्मं विचिन्तयेत् ।
सालम्बाच्च निरालम्बं तत्त्ववित् तत्त्वमञ्जसा ॥
एवं चतुर्विधध्यानामृतमग्नं मुनेर्मनः ।
साक्षात्कृतजगत्तत्त्वं विधत्ते शुद्धिमात्मनः ॥
—योगशास्त्र प्रकाश १०

परमात्मा का स्वरूप

मूल पाठ

*सव्वे सरा णियट्टंति, तक्का जत्थ न विज्जइ, मइ तत्थ न गाहिया, ओए, अप्पइट्ठाणस्स खेयन्ने, से न

---

* सर्वे स्वरा निवर्तन्ते तर्को यत्र न विद्यते मतिस्तत्र न ग्राहिका ओज अप्रतिष्ठानस्य खेदज्ञः स न दीर्घो न, ह्रस्वो न न

दीहे, न हस्से, न वट्टे, न तंसे, न चउरंसे, न परिमंडले, न किण्हे, न नीले, न लोहिए न हालिद्दे, न सुक्किल्ले, न सुरभिगंधे, न दुरभिगंधे, न तित्ते, न कडुए, न कसाए, न अंबिले, न महुरे, न कक्खडे, न मउए, न गरुए, न लहुए, न सीए, न उण्हे, न णिद्धे, न लुक्खे, न काऊ, न रुहे, न संगे, न इत्थी, न पुरिसे, न अन्नहा, परिन्ने, सन्ने, उवमा न विज्जए, अरूवी सत्ता, अपयस्स पयं नत्थि।

से न सद्दे, न रूवे, न गंधे, न रसे, न फासे।

—आचारांगसूत्र प्रथमश्रुतस्कंध अध्याय ५ उद्देश ६।

संस्कृत-व्याख्या

'सर्वे' निरवशेषा 'स्वरा' ध्वनयो यस्मान्निवर्तन्ते तद् वाच्य वाचक-सम्बन्ध न प्रवर्तन्ते तथाहि—शब्दा प्रवर्तमाना रूप रस-गन्ध-स्पर्शानामन्यतमे विशेष संकेत-काल-गृहीते तत्तुल्ये वा प्रवर्तेरन् न चैतत्र शब्दादिना प्रवृत्तिनिमित्तमस्ति अत शब्दानभिधेया मोक्षावस्था। न

त्र्यस्रो न चतुरस्रो, न परिमण्डलो न कृष्णो न नीलो न लोहितो, न हारिद्रो न शुक्लो न सुरभिगन्धो, न दुरभिगन्धो न तिक्तो न कटुको न कषायो, नाम्लो न मधुरो, न कर्कशो न मृदु, न गुरु न लघु न शीतो नोष्णो, न स्निग्धो न रूक्षो न कायवान् न रुह न सङ्ग न स्त्री न पुरुष नान्यथा परिज्ञ संज्ञ, उपमा न विद्यते अरूपिणी सत्ता अपदस्य पद नास्ति।

स न शब्द, न रूप न गन्ध न रस न स्पर्श।

केवल शब्दानभिधया, उन्प्रक्षणीयापि न समवतीयाह्—सभवन्पदार्थ-विन्पास्तित्वाध्यवसाय ऊहरतक एवमेव चतस्त्यात स च यत्र न विद्यते तत घञ्नाना कुत प्रवत्ति स्यात किमिति तत्र तर्काभाव इति चदाह मनन मतिः—मनसो व्यापार पदार्थचिन्ता सौत्पत्तिक्यादिका चतुर्विधापि मतिस्तत्र न ग्राहिका मोक्षावस्थाया सकल—विकल्पातीतत्वात्, तत्र च मोक्षे कर्मानसर्मवतस्य गमनमाहोस्विन्निष्कर्मण ?, न तत्र कमसम न्वितस्य गमनमस्तीत्येतद्दर्शयितुमाह— ग्राज ' एवा.श्रप— मलकलकाकरहित किं च—न विद्यते प्रतिष्ठानमौदारिक-शरीराकर्मणो वा यत्र साऽप्रतिष्ठाणो मोक्षस्तस्य खेदज्ञो ' निपुणो यदि वा भ्रप्रतिष्ठा-नो नरकस्तत्र स्थित्यादिपरिज्ञानतया खेदज्ञो लोकनाडि-पर्यन्तपरिज्ञाना वदनेन च समस्तलोकक्षदर्शिता ग्रावदिता भवति । सवस्वरनिरूपण च येनाभिप्रायेणोक्तवास्तमभिप्रायमाविष्कुर्वन्नाह—'स' परमपदाभ्यासी लोकान्त श्रेणिप्रडभागक्षत्रावस्थानोऽनन्तज्ञानदर्शनोपयुक्ता सस्थानमाश्रित्य न दीर्घो न ह्रस्वो न वत्तो न त्र्यस्रो न चतुरस्रो न परिमडलो वर्णमाश्रित्य न कृष्णो न नीलो न लोहितो न हारिद्रो न शुक्लो, गन्धमाश्रित्य—न सुरभिगन्धो,न दुरभिगन्धो,रसमाश्रित्य—न तिक्तो न कटुको न कषायो नाम्लो न मधुर स्पर्शमाश्रित्य—न कर्कशो न मृदु न लघु न गुरु ,न शीतो नोष्णो न स्निग्धो न रूक्षो, 'न काउ' इत्यनन लेश्या गृहीता र्ता कर्म वा न कायवान् यथा वेदान्तवादिनाम्—एक एव मुक्तात्मा तत्कायमपरे क्षीणक्लेशा मनुप्रविशन्ति भ्रादित्य–रश्मय इवांशुमन्तमिति, तथा न रुह् बीज— जन्मनि प्रादुर्भावे 'च"—रोहतीति रुह न रुहोऽरुह कर्मबीजाभावादपु नर्भावीत्यय न पुनयथा शाक्यानां दर्शन—निकारतो मुक्तात्मनोऽपि पुनर्भवोपादानमिति उक्त च—

> दग्धेंघन पुनरुपैति भव प्रमथ्य,
> निर्वाणमप्यनवधारित-भीरुनिष्ठम् ।

मुक्त स्याय वतभवदन पराथगूर
स्वच्छासन प्रतिहतेऽपिह् माहराज्यम् ॥१॥

तथा च न विद्य गणोऽमूर्तत्वाद्स्य न तथा, तथा न स्त्री न पुरुषा, न्ययेति—न नपुसका यवल मर्धराह्मप्रदेश परि समन्तात् विनयना जानातीति-परिज्ञ तथा मामायत सम्यग् जानाति—पश्यति इति गना ज्ञानम्ञानपुन इत्यथ । यदि नाम स्वरूपतो न ज्ञायते, मुक्तात्मा तथा युपमाद्वारेणादित्य गनिरिव ज्ञायत एवति चत् त न यन उपनीयते सादृश्यात् परिच्छिद्यते यया सोपमा तुल्यता सा मुक्तात्मन स्तज्ञानमुखपोर्वा न विद्यते लोकातिगत्वात्तयां कुत एतदिति चेदाह—तेषां मुक्तात्मनां या सत्ता सा अरूपिणी अरूपित्व च दीर्घादिप्रतिषधन प्रतिपादितमेव । किं च न विद्यत पदम्—अवस्थाविशषो यस्य सोऽपद तस्य पद्यते गम्यते यनाथस्तत्पदम्—अभिधान तच्च नास्ति न विद्यते वा च्यविशषाभावात् तथाहि—यो भिधीयते स रूप गन्ध रसस्पर्शादिकतर विशषणाभिधीयते तस्य च तदभाव इत्येतद्दर्शयतुमाह—यदि वा दीर्घ त्यादिना रूपादिविशष निराकरण कृतम् इह तु त सामान्य निराकरण कर्तुकामाह—स मुक्तात्मा न शब्दरूप न रूपात्मा न गन्ध न रस, न स्पश ।

हिन्दी भावार्थ—

मुक्तात्मा का स्वरूप बताने के लिए कोई भी शब्द समर्थ नही है । तर्क की वहा गति नही होती है । बुद्धि वहा तक जा नही सकती है । उसकी कल्पना नही की जा सकती है । वह मुक्तात्मा सकल कर्म रहित सम्पूर्ण ज्ञानमय दशा म विराजमान है । वह न लम्बा है न छोटा है न गोल है न त्रिकोण है, न चौरस है न मण्डलाकार है न काला है न नीला है न लाल है । वह पीला और सफेद भी नहीं है । सुगन्ध और दुर्गन्ध

वाला नहीं है। तीक्ष्ण और कटुक नहीं है। कसैला खट्टा और मीठा नहीं है। वह न कठोर है न सुकुमार है न हल्का है न भारी है न शीत है न उष्ण है न स्निग्ध है न रूक्ष है न शरीरधारी है न पुनर्जन्मा है न आसक्त है न स्त्री है न पुरुष है न नपुंसक है। वह ज्ञाता है परिज्ञाता है उसका उपमा नहीं है। वह अरूपी है अवर्णनीय है शब्दों द्वारा उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है।

मुक्तात्मा शब्द रूप रस गंध और स्पर्श स्वरूप भी नहीं है।

मूल पाठ

* एक्कतीस सिद्धाइगुणा पण्णत्ता, तजहा—खीणे आभिणिबोहिय-णाणावरणे, खीणे सुयणाणावरणे, खीणे ओहियणाणावरण, खीणे मणपज्जवणाणावरण

---

* एकत्रिंशत् सिद्धादिगुणा प्रज्ञप्ता तद्यथा क्षीणमाभिनिबोधिक ज्ञानावरण क्षीण श्रुतज्ञानावरण क्षीणमवधिज्ञानावरणं क्षीणं मन पर्यवज्ञानावरण क्षीण केवलज्ञानावरण क्षीणं चक्षुर्दर्शनावरण क्षीणमचक्षुर्दर्शनावरण क्षीणमवधिदर्शनावरण क्षीण केवलदर्शनावरण क्षीणा निद्रा क्षीणा निद्रानिद्रा क्षीणा प्रचला क्षीणा प्रचलाप्रचला क्षीणा स्त्यानर्द्धि, क्षीण सातावेदनीय, क्षीणमसातावेदनीय क्षीण दर्शनमोहनीय, क्षीण चारित्रमोहनीय, क्षीण नरकायुष्क, क्षीण तिर्यंगा युष्क क्षीण मनुष्यायुष्कं क्षीण देवायुष्कं, क्षीणमुच्चगोत्र क्षीणं नीचगोत्र क्षीणं शुभनाम क्षीणमशुभनाम क्षीणो दानान्त राय क्षीणो लाभान्त राय क्षीणो भोगान्तराय क्षीण उपभोगान्तराय क्षीणो वीर्यान्तराय ।

खीणे केवलणाणावरणे, खीणे चक्खुदंसणावरणे, खीणे अचक्खुदसणावरणे, क्षीणे ओहिदसणावरणे, खीणे केवलदसणावरणे, खीणे णिद्दा खीणे निद्दानिद्दा, खीणे पयला, खीणे पयलापयला, खीणे थीणद्धी, खीणे सायावेयणिज्जे, खीणे असायावेयणिज्जे, खीणे दसण-मोहणिज्जे खीणे चरित्तमोहणिज्जे, खीणे नेरइ-आउए, खीणे तिरिआउए, खीणे मणुस्साउए, खीणे देवाउए, खीणे उच्चागोए, खीण निच्चागोए, खीणे सुभणामे, खीणे असुभणामे, खीणे दाण तराए खीणे लाभतराए, खीणे भोगतराए, खीणे उवभोगतराए खीणे वीरियतराए।

—समवायाग सूत्र समवाय ३१

हिन्दी भावाथ—

सिद्धो के ३१ गुण माने जाते है। जैसे कि—

१ आभिनिबोधिक ज्ञानावरण मतिज्ञानावरण कर्म का क्षय।
२ श्रुतज्ञानावरण कर्म का क्षय।
३ अवधि ज्ञानावरण कर्म का क्षय।
४ मन पेयव ज्ञानावरण कर्म का क्षय।
५ केवल ज्ञानावरण कर्म का क्षय।
६ चक्षुदर्शनावरण कर्म का क्षय।
७ अचक्षुदर्शनावरण कर्म का क्षय।
८ अवधि दर्शनावरण कर्म का क्षय।
केवल दर्शनावरण कर्म का क्षय।

१० निद्रा का क्षय ।
११ निद्रानिद्रा का क्षय ।
१२ प्रचला का क्षय
१३ प्रचल प्रचला का क्षय ।
१४ स्त्यानर्द्धि का क्षय ।
१५ सातावेदनीय कर्म का क्षय ।
१६ असातावदनीय कर्म का क्षय ।
१७ दर्शनमोहनीय कर्म का क्षय ।
१८ चारित्रमोहनीय कर्म का क्षय ।
१९ नरकायु का क्षय ।
२० तिर्यञ्चायु का क्षय ।
२१ मनुष्यायु का क्षय ।
२२ देवायु का क्षय ।
२३ उच्च गोत्र कर्म का क्षय ।
२४ नीच गोत्र कर्म का क्षय ।
२५ शुभ नाम कर्म का क्षय ।
२६ अशुभ नाम कर्म का क्षय ।
२७ दानान्तराय कर्म का क्षय ।
२८ लाभान्तराय कर्म का क्षय ।
२९ भोगान्तराय कर्म का क्षय ।
३० उपभोगान्तराय कर्म का क्षय ।
३१ वीर्यान्तराय कर्म का क्षय ।

मूल पाठ

* कहिं पडिहया सिद्धा ? कहिं सिद्धा पइट्ठिया ?
कहिं बोंदिं चइत्ता ण, कत्थ गंतूण सिज्झइ ? ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या

अथ प्रश्नासूत्र द्वारेण सिद्धानामेव वक्तव्यतामाह—कहिं इत्यादि श्लोकद्वय, क्व प्रतिहता —क्व प्रस्खलिता सिद्धा मुक्ता ? तथा क्व सिद्धा प्रतिष्ठिता-व्यवस्थिता इत्यर्थ ? तथा क्व बोन्दिं शरीर त्यक्त्वा? तथा क्व गत्वा सिज्झइ त्ति प्राकृतत्वात । स हु चाईत्ति वुच्चइ इत्यादिवत् सिध्यन्तीति व्याख्येयमिति ।

हिन्दी-भावार्थ

सिद्ध कहां पर प्रतिहत होते हैं ? अर्थात् निष्कर्म आत्मा ऊपर की ओर गमन करती हुई कहां पर जा कर रुकती है ?
सिद्ध कहां पर जा कर ठहरते हैं ?
सिद्ध कहां पर शरीर छोडते हैं और कहां पर जा कर सिद्धावस्था को प्राप्त करते हैं ?

मूल पाठ

† अलोगे पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया ।
इहं बोंदिं चइत्ता ण, तत्थ गंतूण सिज्झइ ॥२॥

---

* कुत्र प्रतिहता सिद्धा ? कुत्र सिद्धा प्रतिष्ठिता ?
कुत्र बोन्दिं (शरीर) च त्यक्त्वा कुत्र गत्वा सिध्यन्ति ?

† अलोके प्रतिहता सिद्धा, लोकाग्रे च प्रतिष्ठिता ।
इह बोन्दिं (शरीर) त्यक्त्वा तत्र गत्वा सिध्यन्ति ॥

संस्कृत-व्याख्या

अलोके अलोकाकाशास्तिकाये प्रतिहता —स्खलिता सिद्धा —मुक्ता
प्रतिस्खलन धर्मास्तिकायवर्तित्वात्, तथा लोकाग्रे च पञ्चास्तिकायात्मक
लोकमूर्धनि च प्रतिष्ठिता अपुनरागमतया व्यवस्थिता इत्यर्थ, तथा इह
मनुष्यक्षेत्रे बोन्दि—तनु परित्यज्य तत्रेति लोकाग्रे गत्वा सिज्झइ त्ति
सिध्यन्ति निष्ठितार्था भवन्ति ।

हिन्दी-भावार्थ

सिद्ध अलोक से प्रतिहत होते हैं, और लोक के अग्रभाग पर जा कर ठहरते हैं ।

मनुष्य क्षेत्र में शरीर छोडते हैं और लोकाग्रभाग पर सिद्धावस्था को प्राप्त होते है ।

मूल पाठ

* जं संठाणं इह भवे, चयतस्स चरिमसमयम्मि ।

आसी य पएसघणं, तं संठाणं तहिं तस्स ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या

विस्त्र—जं संठाणं गाहा व्यक्ता नवरं प्रदेशघनमिति विभागन
रन्ध्रपूरणादिति हिं ति सिद्धि क्षेत्रे तस्स त्ति सिद्धस्येति ।

हिन्दी-भावार्थ

सिद्ध आत्मा का इस मनुष्य क्षेत्र में जो संस्थान (आकार)
होता है अन्तिम समय में वह छोटा रह जाता है । छोटा हो

---

* यत्संस्थानमिह भवे त्यजत चरमसमये ।
आसीच्च प्रदेशघनं तत्संस्थानं तत्र तस्य ॥

जान का कारण यह है कि शरीर में आत्मप्रदेशों का जो फलाव होता है शरीर से बाहिर निकलने पर वह उस रूप में नहीं रहा पाता है तीसरा भाग उस में कम पड जाता है। तीसरा भाग कम हो जाने पर सिद्ध जीव के आत्म प्रदेशों का जो आकार होता है, वही आकार मोक्षावस्था में उस सिद्ध जीव का बना रहता है।

मूल पाठ

* दीहं वा हस्सं वा जं चरिमभवे हवेज्ज संठाणं।
तत्तो तिभागहीणं, सिद्धाणोगाहणा भणिया ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या

तथा चाह— दीर्घं वा यत्, दीर्घ वा पञ्च धनु शतमान ह्रस्व वा हस्तद्वयमान वा शब्दात् मध्यमं वा चरमभवे भव सस्थान तत ' तस्मात् सस्थानात् त्रिभागहीना त्रिभागेन सुषिरपूरणात् सिद्धा नामवगाहना— अवगाह ते अस्यामवस्थायामिति अवगाहना स्वावस्थवृत्ति भाव भणिता उक्ता जिनैरिति।

हिन्दी-भावार्थ

चरमशरीरी जीव (मुक्त) का दीर्घ-बडा या ह्रस्व-छोटा जो संस्थान होता है उस में से तीसरा भाग कम कर के जो शेष रह जाता है वह संस्थान सिद्ध जीवों की अवगाहना (आकार) होती है। भाव यह है कि चरमशरीरी जीव के शरीर में नासिकारन्ध्र, कर्ण रन्ध्र आदि जो आत्मप्रदेशों से

---

* दीर्घं वा ह्रस्वं वा यत् चरमभवे भवेत् संस्थानम्।
ततः त्रिभागहीन सिद्धानामवगाहना भणिता ॥

रहित स्थान रहना है आत्मा के मुक्त हो जाने पर आत्म प्रदेश उस स्थान में व्याप्त हो जाते हैं परिणामस्वरूप शरीर-स्थ उन जीवप्रदेशों का जो आकार रहता है, वह मुक्त दशा में रह नहीं पाता है। उसमें न्यूनता आ जाती है और वह न्यूनता भी शरीराधिष्ठित आत्मप्रदेशों के आकार के तीन भागों में से एक भाग की होती है। इसी लिए ऊपर गाथा में कहा गया है कि जीव का दीर्घ या ह्रस्व जो संस्थान होता है, उस में से तीसरा भाग कम कर देने पर अवशिष्ट संस्थान सिद्ध जीवों में पाया जाता है।

मूल पाठ

तिण्णि सया तेत्तीसा, धणु त्ति भागो य होइ बोधव्वा।
एसा खलु सिद्धाणं, उक्कोसोगाहणा भणिया ॥५॥
चत्तारि य रयणीओ-रयणि-त्ति भागूणिया य बोद्धव्वा।
एसा खलु सिद्धाणं, मज्झिमओगाहणा भणिया ॥६॥
एक्का य होइ रयणी, साहीया अंगुलाइ अट्ठ भवे।
एसा खलु सिद्धाणं, जहण्णओगाहणा भणिया ॥७॥

---

* त्रीणि शतानि त्रयस्त्रिंशानि धनूंषि त्रिभागश्च भवति बोधव्या।
एषा खलु सिद्धानामुत्कृष्टा अवगाहना भणिता ॥
चतस्रश्च रतनय रत्नित्रिभागोनिका च बोधव्या।
एषा खलु सिद्धानां मध्यमावगाहना भणिता ॥
एका च भवति रत्नि साधिका अंगुलानि अष्ट भवेयु।
एषा खलु सिद्धानां जघन्यावगाहना भणिता ॥

संस्कृत–व्याख्या

अथावगाहनामेवोत्कृष्टादिभेदैराह— तिण्णि सते' त्यादि, इयं च पञ्चधनुःशतमानानां 'चत्तारि ये' त्यादि तु सप्तहस्तानाम् 'एगा ये' त्यादि द्विहस्तमानानामिति । इयं च त्रिविधाऽप्यवगाहना जघन्या यथा सप्तहस्तमाना ए च उपविष्टाना सिद्ध्यताम् यथाऽपि स्यादिति । आक्षेप परिहारौ पुनरेवमत्र-ननु नाभिकुलकर पञ्चविंशत्यधिकपञ्चधनुःशतमान प्रतीत एव तद्भार्याऽपि मरुदेवी तत्प्रमाणैव, उच्चत्त चेव कुलगरेहिं सममिति वचनात् अतस्तदवगाहना उत्कृष्टावगाहनातोऽधिकतरा प्राप्नोतीति कथं न विरोधः ? अत्रोच्यते यद्यपि उच्चत्वं कुलकरतुल्यं तद् योषितामपीत्युक्तं तथापि प्रायिकत्वादस्य स्त्रीणां च प्रायेण पुम्भ्यो लघुतरत्वात् पञ्चैव धनुःशतान्यसावभवत् वृद्धकाले वा सङ्कोचात् पञ्च धनुःशतमाना सा अभवद् उपविष्टा वाऽसौ सिद्धेति न विरोधः अथवा बाहुल्यापेक्षमिदमुत्कृष्टावगाहनामानं, मरुदेवी त्वाश्चर्यभूतेत्यदोषमपि न विरोधः ननु जघन्यतः सप्तहस्तोच्छ्रितानामेव सिद्धिः प्रागुक्ता तत्कथं जघन्यावगाहना अष्टाङ्गुलाधिकहस्तप्रमाणा भवतीति ? अत्रोच्यते सप्तहस्तोच्छ्रितेषु सिद्धिरिति तीर्थकरापेक्षं ये तु द्विहस्ता अपि कूर्मपुत्रादयः सिद्धा अतस्तदपेक्षया जघन्याऽवसेया । केचित्त्वाहुः —सप्तहस्तमानस्य सर्वतिसाङ्गोपाङ्गस्य सिद्ध्यतो जघन्यावगाहना स्यादिति ।

हिन्दी–भावार्थ

सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना तीन सौ तत्तीस धनुष और एक धनुष का तीसरा भाग मानी जाता है।

सिद्धों की मध्यम अवगाहना एक हाथ का तीसरा भाग कम चार हाथ बतलाई गई है।

सिद्धों की जघन्य अवगाहना आठ अंगुल अधिक एक हाथ होती है।

मूल पाठ

* ओगाहणाए सिद्धा भवत्तिभागेण होइ परिहीणा ।
संठाणमणित्थंथं, जरामरणविप्पमुक्काणं ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या

अवगाहनायाः स्वदेहावगाहनायाः नवरम् प्राणिवध नि प्रमु प्रकारमात्रनमित इत्थं निष्प्रीति इत्थंस्य न इत्थंस्य अनित्थंस्थं न कनचित्लौकिकप्रकारेण स्थितमिति ।

हिन्दी-भावार्थ

जिस अवगाहना (लम्बाई चौड़ाई) में सिद्धात्माएं विराजमान होती हैं वह मनुष्य जीवन की अवगाहना से तीसरा भाग कम होती है । जरा (वृद्धावस्था) और मरण से रहित सिद्ध जीवों का संस्थान (आकार) अनिश्चित होता है । लोक में जो संस्थान पाए जाते हैं उन में से किसी विशेष संस्थान का वहां कोई नियम नहीं होता ।

मूल पाठ

जत्थ य एगो सिद्धो तत्थ अणंता भवक्खयविप्पमुक्का ।
अण्णोण्णसमवगाढा पुट्ठा सव्वे य लोगन्ते † ॥९॥

---

* अवगाहनायां सिद्धा भवत्रिभागेन भवन्तु परिहीनाः ।
संस्थानमनित्थंस्थं जरा मरण विप्रमुक्तानाम् ॥

† यत्र चैकः सिद्धः, तत्रानन्ता भवक्षयविमुक्ताः ।
अन्योन्यसमवगाढाः स्पृष्टाः सर्वे च लोकान्ते ॥

संस्कृत–व्याख्या

अर्थते कि देशभञ्ज स्थिता उत्ताथयरयामाष्काथामाह— जत्थ य गाहा यत्र च–यत्र देशे एक सिद्धो—निव सस्तत्र देश अनन्ता हिम ?– भवक्षयविमुक्ता' इति भवशब्देन विमुक्ताः भवमयविमुक्ता अनन्त स्वरूप्या भवावतरणविरामसिद्धस्यवदन्यमाह । यथायसमवगाम्य तथाविधाविरयपरिणामत्वाद्धर्मास्तित्वायास्विदिति स्पृष्टा — नन्ना सर्वे च लोकान्ते अन्योन्य प्रतिम्बिलितत्वात् अतएव नायगो य पत्ट्ठिया' इत्युक्तमिति ।

हिन्दी–भावार्थ

सिद्ध जीव भवक्षय (जन्म मरण का नाश) के कारण मुक्त मान जाते हैं। जहां एक सिद्ध रहता है वहां अनन्त सिद्ध आत्माएं निवास करती हैं। ये सब एक दूसरे का अवगाहन कर रहे हैं जिन आत्मप्रदेशों पर एक सिद्ध विराजमान है उन्हीं पर अनन्त सिद्ध अवस्थित हैं। अनेक दीपकों के प्रकाश जैसे एक दूसरे के साथ रहते हैं वैसे ही अनन्त सिद्ध जीवों के आत्मप्रदेश परस्पर अवगाहन को प्राप्त हो रहे हैं। इस के अतिरिक्त सभी सिद्धों के आत्मप्रदेश लोक के अन्त को स्पर्श भी कर रहे हैं।

मूल पाठ

*फुसइ अणंते सिद्धे सव्वपएसेहिं णियमसो सिद्धो।
ते वि असंखेज्जगुणा देसपएसेहिं जे पुट्ठा ॥१०॥

---

* स्पृशति अनन्तान् सिद्धान् सर्वप्रदेशैः नियमतः सिद्धः ।
तेऽपि असंख्येयगुणाः देशप्रदेशैः ये स्पृष्टाः ॥

संस्कृत–व्याख्या

तथा फुसइ' गाहा स्पृशत्यनन्तान् सिद्धान् सर्वप्रदेशैरात्मसम्बन्धिभि णियमसो त्ति नियमेन सिद्ध तथा तेऽप्यसंख्येयगुणा वर्तन्ते देश प्रदेशैश्च ये स्पृष्टा केभ्य ? सर्वप्रदेशस्पृष्टेभ्य कथम ? —सर्वात्म प्रदेशैस्तावदनन्ता स्पृष्टा एक सिद्धावगाहनायामनन्तानामवगाढत्वात् तथ एकप्रदेशेनाप्यनन्ता एवमेकैकप्रदेशेनाप्यनन्ता एव भवन्ति देशो—द्वया दिप्रदेश समुदाय प्रदेशस्तु निर्विभागोंऽश इति सिद्धश्चासंख्येयदेश प्रदेशात्मक ततश्च मूलानन्त्यमसंख्येयदेशानन्त्यैरसंख्यैरेव च प्रदेशानन्त्य गुणित यथोक्तमेव भवतीति ।

हिन्दी–भावार्थ

सिद्ध अपने आत्मप्रदेशों से अनन्त सिद्धों को स्पर्श किए हुए हैं और देश (दो से अधिक) एवं प्रदेश (एक आत्मप्रदेश) द्वारा जो स्पर्श किए हुए हैं, वे उन से असंख्यात गुणा हैं ।

मूल पाठ

* असरीरा जीवघणा उवउत्ता दंसणे य नाणे य ।
सागारमणागारं लक्खणमेयं तु सिद्धाणं ॥११॥

संस्कृत–व्याख्या

अथ सिद्धानेव लक्षणत आह— असरीरा' गाहा, उक्तार्था संग्रह रूपत्वाच्चास्या न पुनरुक्तत्वमिति ।

हिन्दी–भावार्थ

सिद्ध भगवान अशरीरी हैं औदारिक वैक्रिय आदि पञ्च

---

* अशरीरा जीवघना उपयुक्ता दर्शने च ज्ञाने च ।
साकारमनाकारं लक्षणमेतत् तु सिद्धानाम् ॥

विध नरारा मे रहित ह उन के आत्मप्रदेश सघन हैं, पोलार से रहित हैं दर्शन और ज्ञान के उपयोग से युक्त ह, वे साकारोपयोग ज्ञानोपयोग वाले ह तथा निराकारोपयोग-दर्शनोपयोग वाले हैं। यही सिद्धा का स्वरूप है।

मूल पाठ

*केवलणाणुवउत्ता जाणंति सव्वभावगुणभावे।
पासंति सव्वओ खलु केवलदिट्ठीहिं णंताहिं ॥१२॥

संस्कृत–व्याख्या

'उवउत्ता दसण य णाणे य ति यदुक्त, तत्र ज्ञानदर्शनयो सर्वविषयतामुपदर्शयन्नाह— केवल' गाहा केवलज्ञानोपयुक्ता स न न स्वल्प करणापेक्षया भावतस्तदभावात् जानन्ति सर्वभावगुण भावान समस्तवस्तुगुणपर्यायान् तत्र गुणा —सहवर्तिन, पर्यायास्तु—क्रमवर्तिन पश्यन्ति तथा पश्यन्ति सर्वत खलु सर्वत एवेत्यर्थ केवलदृष्टिभिरनन्ता भि —केवलदर्शनैरनन्तैरित्यर्थ अनन्तत्वात सिद्धानामनन्तविषयत्वाद्वा दर्शनस्य केवलदृष्टिभिरनन्ताभिरित्युक्तम् इह चादौ ज्ञानग्रहण प्रथमतया तदुपयोगस्या सिध्यन्तीति ज्ञापनार्थ मिति।

हिन्दी–भावार्थ

सिद्ध भगवान केवल ज्ञानोपयोग से सब पदार्थों के गुण और पर्यायों को जानते है एव अनन्त केवल दर्शनोपयोग से सभी पदार्थों के गुण और पर्यायों को देखते हैं।

---

* केवलज्ञानोपयुक्ता जानन्ति सर्वभावगुणभावान्।
पश्यन्ति सर्वत खलु केवलदृष्टिभिरनन्ताभि ॥

मूल पाठ

* णवि अत्थि माणुसाणं तं सोक्खं णवि य सव्वदेवाणं ।
जं सिद्धाणं सोक्खं अव्वाबाहं उवगयाणं ॥१३॥

संस्कृत–व्याख्या

अथ सिद्धानां निरुपमसुखता ख्यापयितुमाह— णवि अत्थि' गाहा व्यक्ता नवरम् अव्वाबाहं ति विविधा आबाधा व्याबाधा तन्निषेधादव्याबाधा तामुपगतानां प्राप्तानामिति ।

हिन्दी–भावार्थ

नाना प्रकार की बाधाओं–पीडाओं से रहित सिद्धों को जो सुख प्राप्त है वह सुख न सबदेवताओं को प्राप्त है और न सब मनुष्यों को ।

मूल पाठ

† जं देवाणं सोक्खं सव्वद्धापिण्डियं अणंतगुणं ।
ण य पावइ मुत्तिसुहं णंताहिं वग्गवग्गूहिं ॥१४॥

संस्कृत–व्याख्या

यस्मादेवमित्याह— जं देवाणं ' गाहा 'यतो' यस्माद्देवानाम्–अनुत्तरसुरान्तानां सौख्यं ' त्रिकालिकसुखं सर्वाद्धया अतीतानागतवर्त

---

* नाप्यस्ति मानुषाणां तत्सौख्यं नापि च सर्वदेवानाम् ।
यत् सिद्धानां सौख्यमव्याबाधामुपगतानाम् ॥

† यद्देवानां सौख्यं सर्वाद्धापिण्डितमनन्तगुणम् ।
न च प्राप्नोति मुक्तिसुखमनन्तानि वर्गवर्गभिः ॥

मानकालेन पिण्डि गुणित सर्वाद्धापिण्डित तयाऽनन्तगुणमिति, तदेवं प्रमाण विनाऽसद्भावकल्पनयाऽप्रदर्श्य स्याद्यत इत्येव सकललोक सावकाशान्तरप्रदेशापूरणनान्त भवति न च प्राप्नोति मुक्तिसुख—तत् मुक्तिसुखसमानतां लभते अनन्तान वर्गवर्गितमुक्तिसुखस्य विविध दवसुख मित्याह अनन्ताभिरपि वर्गवर्गाभि वर्गवर्गवर्गितमपि तत्र तद्गुणो वर्गो यथा द्वयोर्वर्गश्चत्वार तस्यापि वर्गो वर्गवर्गो यथा षोडश एवमनन्तशो वर्गितमपि । चूर्णिकारस्त्वाह–अनन्तरपि वर्गवर्गै–खण्डखण्ड खण्डित सिद्धसुख तत्रीयानन्तान तत्समखण्डसमतामपि न लभते इत्यर्थ । तस्मो नास्ति तन्मानुषादीनां सुख यत्सिद्धानामिति प्रकृतम ।

हिन्दी–भावार्थ

देवताओं के सकालिक सुख का एकत्रित कर के यदि अनन्त गुणा किया जाए तो भी वह मुक्ति सुख के अनन्तवें भाग की समता नहीं कर सकता है।

मूल पाठ

* सिद्धस्स सुहो रासी सव्वद्धापिण्डिओ जइ हवेज्जा ।
सोऽनंतवग्गभइओ सव्वागासे ण माएज्जा ॥१५॥

संस्कृत–व्याख्या

सिद्धसुखस्यवाल्पपमाय मद्भूय तरणाह– सिद्धस्स ग्राहा सिद्धस्य मुक्तस्य सम्बन्धी सुख' सुखानां सञ्च। राशि समूह सुखसघात इत्यर्थ सर्वाद्धापिण्डित सर्वकालसमयगुणितो यदि भवेद् अनन्त चास्य कल्पनामात्रतामाह—सोऽनन्तवर्गभक्तो—अनन्तवर्गापवर्तित सन् समाभत

*सिद्धस्य सुखो राशि सर्वाद्धापिण्डितो यदि भवेद् ।
सोऽनन्तवर्गभक्त सर्वाकाशे न मायात ॥

गवेति भावार्थ सर्वाकाश लोकालोकरूपे न मायात् प्रथमत्र भावार्थ - इह किल विशिष्टाह्लाद रूप सुखं गृह्यते तनश्च यत आरभ्य शिक्षाना सुख-सम्प्रवृत्तिस्तमाह्लादमवधीकृत्य एकैकगुणवृद्धितारतम्येन तावत्सावा-ह्लादो विशिष्यते यावदनन्तगुणवृद्धया निरतिशयनिष्ठां गत तदृशवासावत्यन्तोपमातीतकालिको सुखयविनिवृत्तिरूप स्तिमिततममहो धिकल्पश्चरमाह्लाद एव सत्र सिद्धाना भवति तस्मात्चारात् प्रथमाच्चा ध्वमपान्तरालवर्तिनो ये तारतम्येनाह्लादविनयास्त सर्वाकाशप्रदेशराशेरपि भूयासो भवन्तीयन किलोक्त-स वाणासे ण माएज्ज ति अन्यथा प्रतिनियतस्वावस्थिति कथ तेषामिति सूरयोऽभिदधताति ।

हिन्दी—भावार्थ

एक सिद्ध के त्रकालिक सुख को भी एकत्रित करके यदि उसे अनन्त विभागों में विभक्त किया जाए तो उसका एक भाग भी सारे आकाश में नहीं समा सकता।

मूल पाठ

* जह नाम कोइ मिच्छो नगरगुणे बहुविहे वियाणतो।
न चएइ परिकहेउ उवमाए तहिं असतोए ॥१६॥

संस्कृत—व्याख्या

अस्य च वक्ष्यमाणस्याधिकृतगाथाविवरणस्यायं भावार्थ — य ए सुखमेदास्ते सिद्धे - सुखपर्यायतया व्यपदिष्टा तदपेक्षया तस्य प्रमाणात्कथ्यमाणस्यान्ततमस्थानवर्तित्वेनोपचारात्, सद्राशिश्च किला सद्भावस्थापनया सहस्र समयराशिस्तु शत सहस्र च शतेन गुणित जात

*यथा नाम कोऽपि म्लेच्छ नगरगुणान् बहुविधान् विजानन् ।
न शक्नोति परिकथयितु उपमायां तत्र असत्याम् ॥

वर्त्तं, गुणन च दर्न सर्व समयसम्बन्धिनां गुणपर्यायाणा मालनाथ सथाऽनन्तरानि विन दन तद्वर्गस्य ध्वार सेनापवर्तित सप्त आन सह्नमय, यत पूज्यस्वत समाभूत एवनि मायाथ इति यच्चाह सुखरा गुणनमपवतन च तस्व सम्भावयाम -दय रिमानन्तराधिना गजितेऽपि सति मनन्तवगणानन्तान्तवरगणानीव महात्म्यपेणापवर्तित किञ्चिदवशिष्यते स राशिरतिमहान् ततश्च सिद्ध-सुखराशिमहानिति बुद्धिजननाय शिष्यस्य तस्यैव वा गणितमार्गे व्युत्पत्तिकरणायमिति । यन्द पुनिरमां गाथामेव व्याख्याति सिद्धगुणपर्यायराशि नभ प्रत्याय-गणितनम प्रदर्शाय प्रमाण मन्परिमाणत्वात् सिद्धगुणपर्यायाणां, सथान्यापिण्डित सर्वसमयसम्बधी सदलित सन्, स पात त अनन्तशो इत्यर्थ वर्गं वगमूलभक्त अपवर्तित अल्पत्व सघन इत्यर्थ यथा किल सर्वसमयसम्बधा सिद्धसुखराशि पञ्चषष्टिसहस्राणि पञ्च शतानि षट्त्रिंशदधिकानि (६५५३६) स च वर्गेणापवर्तित सन् जात द्वे शते षट्पञ्चाशदधिक साऽपि स्वर्गापवर्तितो जाता षोडश तत्र्यपवारं सनां द्वाविंशेयमतिलघुत्वतोऽपि सर्वाकाशे न मायाद् एतदेवाह सव्वागासे न माएज्ज' त्ति । अथ सिद्धसुखस्यानुपमतां दृष्टान्तेनाह— जह णा पूवार्धं व्यक्त न चएइ' त्ति न शक्नोति परिकथयितु नगर गुणानरण्यगतोऽरण्यवासिम्लेच्छस्य कृत इत्याह–उपमाया तत्र नगरगुणोऽरण्ये वासो यामिति कथानक पुनरेवम्—

म्लेच्छः कोऽपि महारण्ये वसति स्म निराकुल ।
अन्यदा तत्र भूपालो दुष्टाश्वेन प्रवेशित ॥१॥
म्लेच्छेनासौ नृपो दृष्ट, सत्कृतश्च यथोचितम ।
प्रापितश्च निज देश, सोऽपि राज्ञा निज पुरम ॥२॥
ममायमुपकारीति कृता राज्ञातिगौरवात् ।
विशिष्टभोगभूतीना भाजन जन - पूजित ॥३॥

तत प्रासाद-शृंगेषु रम्येषु काननेषु च ।
वृना विलासिनीमार्थं भुक्त, भोग सुखान्यसौ ॥४॥
अन्यदा प्रावृष प्राप्तौ मघाम्बरमण्डितम ।
व्योम दृष्ट्वा ध्वनि श्रुत्वा मघाना स मनोहरम ॥५॥
जातोत्कण्ठा दृ जातोऽरण्यवासगम प्रति ।
विसर्जित च राज्ञापि प्राप्तोऽरण्यमसौ तत ॥६॥
पृच्छद्यरण्यवासाम्न नगर तात ! कीदृशम् ?
स स्वभावान् पुर सर्वान जानात्येव हि वर्णनम ॥७॥
न गाक्त तरा (तरा) तथा गदितु स शृताद्यम ।
वन वन चराणा हि, नास्ति सिद्धोपमा यन (तथा) ॥८॥

हिन्दी-भावार्थ

जैसे कोई म्लेच्छ (अरण्यवासी) नगर के बहुत से गुणों को जानता हुआ भी वहा उपमा के अभाव के कारण उन्हें कह नहीं सकता।

मूल पाठ

* इय सिद्धाण सोक्खं अणोवमं णत्थि तस्स ओवम्मं ।
किंचि विसेसेणत्तो आवम्ममिण सुणह वोच्छं ॥१७॥

सस्कृत-व्याख्या

अथ दार्ष्टान्तिकमाह— इय गाहा, इति एवम अरण्ये नगरगुणा इवत्यप सिद्धाना सौख्यमनुपम वर्तते किमित्यमित्याह—यतो नास्ति तस्यौपम्य तथापि बालजनप्रतिपत्तये किञ्चिद्विशेषणाह—'एत्तो' त्ति

*इति सिद्धाना सौख्यमनुपम नास्ति तस्य औपम्य ।
किञ्चित् विशेषेण इत औपम्यमिद शृणुत वक्ष्यामि ॥

आपवाद्‍स्य—सिद्धिसुखस्य इवा वाऽनन्तरम् औपम्य—उपमानम् (इन) उच्यमाण शृणुत वक्ष्ये इति ।

हिन्दी–भावार्थ

इसी प्रकार सिद्धों का सुख उपमा रहित है । इसकी कोई उपमा नहीं है ।

सिद्धों का सुख उपमा के द्वारा कथन नहीं किया जा सकता है यह सत्य है, तथापि जनसाधारण के लिए सिद्धों के सुख को दृष्टान्त द्वारा बतलाया जायगा । उसे सुनो ।

मूल पाठ

* जह सव्वकामगुणियं पुरिसो भोत्तुण भोयणं कोइ ।
तण्हाछुहाविमुक्को अच्छेज्ज जहा अमियतित्तो ॥१८॥
इय सव्वकालतित्ता अतुलं निव्वाणमुवगया सिद्धा ।
सासयमव्वाबाहं चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता ॥१९॥

संस्कृत–व्याख्या

जह' गाहा, 'यथा' इत्युदाहरणोपन्यासार्थः सर्वकामगुणितं सजातसमस्तकमनीयगुणं भोज्यं व्यक्तम् इह च रसनेन्द्रियेणैवाधिकृष्ट विषयप्राप्त्या भोक्तुमयनिवृत्त्या सुखप्रमान सकलेन्द्रियाथावाप्त्या भावोत्सु क्यनिवृत्त्युपलक्षणार्थम्, अन्यथा बाधान्तरसम्भवात् समार्थाभाव इति ।

---

* यथा सर्वकामगुणितं पुरुषो भुक्त्वा भोजनं कोऽपि ।
तृष्णाक्षुधाविमुक्तः आस्ते यथा अमृततृप्तः ॥
इति सर्वकालतृप्ता अतुलं निर्वाणमुपगता सिद्धाः ।
शाश्वतमव्याबाधं तिष्ठन्ति सुखिनः सुखं प्राप्ताः ॥

इय' गाहा इय एव सववालतप्ता शाश्वदभावात् ग्रतुल निर्वाणमुपगता सिद्धा सवदा सकलौत्सवयनिवत्त यनश्चवमत शाश्वत सवकालभावि ग्रव्याबाध व्याबाधावर्जित मस प्राप्ता सुखिनस्तिष्ठन्तीति योग, सुख प्राप्ता इत्युक्त सुखिन इत्यनथकमिति चेत् नव दुःखाभावमात्रमुक्तिलक्षनिरासेन वास्तव्यसुखप्रतिपादनीयत्वादस्य तथाहि—सर्वायौपपन्न शाश्वतमव्याबाधसुख प्राप्ता सुखिन सन्त निष्ठन्ति, न तु दुःखाभावमात्रा विना एवेति ।

हिन्दी–भावाथ

जसे कोई पुरुप सव प्रकार के सुदर गुणा स युक्त भाजन को खाकर अमृत से तृप्त हुए व्यक्ति के समान पिपासा और क्षुधा से रहित हो जाता है इसी तरह सदा तृप्त रहने वाल उपमारहित निर्वाण (शान्ति) को प्राप्त हुए सिद्ध शाश्वत (नित्य) श्रार बाधा रहित सुख को प्राप्त करके सुखी बन रहते हैं ।

मूल पाठ

* सिद्ध त्ति य बुद्ध त्ति य पारगय त्ति य परपरगय त्ति ।
उम्मुक्कम्मकवया अजरा अमरा असंगा य ॥२०॥

---

* सिद्धा इति च बुद्धा इति च पारगता इति च परम्परागता इति ।
उन्मुक्तकर्मकवचा अजरा अमरा असङ्गाश्च ॥
निस्तीर्णसर्वदुःखा जाति जरामरण बन्ध विमुक्ता ।
अव्याबाध सुखमनुभवन्ति शाश्वतं सिद्धा ॥
अतुलसुखसागरगता अव्याबाधमनुपं प्राप्ता ।
सर्वामनागतामद्धा तिष्ठन्ति सुखिन सुख प्राप्ता ॥

णिच्छिण्णसव्वदुक्खा जाइजरामरणबंधणविमुक्का ।
अव्वाबाहं सुक्खं अणुहोति सासयं सिद्धा ॥२१॥
अतुलसुहसागरगया अव्वाबाहं अणोवमं पत्ता ।
सव्वमणागयमद्धं चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता ॥२२॥

संस्कृत-व्याख्या

साम्प्रत सस्तेन सिद्धपर्यायशब्दान् प्रतिपादयन्नाह— सिद्ध त्ति य गाथा सिद्धा इति च तेषां नाम कृतकृत्यत्वात् तथ बुद्धा इति केवलज्ञानेन विश्वावबोधात् पारगता इति च भवार्णवपारगमनात् परपरगय त्ति—पुनर्बीजसम्यक् तथा ज्ञानचरणप्राप्त्युपायपुरस्सरं तु परम्परया गता परम्परगता उच्यते उन्मुक्तकर्मकवचा सकलकर्मवियुक्तत्वात् तथा अजरा वयसोऽभावात् अमरा आयुषोऽभावात् असगाश्च सकलक्लेशाभावात् इति । णिच्छिण्ण गाथा अतुल गाथा व्यक्तार्थे एवेति ।

हिन्दी-भावार्थ

सिद्ध, बुद्ध, पारगत परम्परगत, उन्मुक्त कर्म कवच अजर अमर असग ये सब सिद्ध जीवों के पर्यायवाचक नाम हैं। सिद्ध कृतकृत्य को कहते हैं। केवल ज्ञान के द्वारा विश्व को जानने वाले बुद्ध कहलाते हैं। ससार रूपी समुद्र से पार हुए को पारगत कहा जाता है। सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन की प्राप्ति, पुन सम्यग् ज्ञान की प्राप्ति तदनन्तर सम्यक्चारित्र की प्राप्ति इस परम्परा द्वारा जिसने मोक्ष को प्राप्त किया है उसे परम्परगत कहते हैं। सब प्रकार के कर्मों से रहित उन्मुक्त-कर्म-कवच जरा आदि अवस्थाओं से रहित अजर आयु से रहित अमर और सब प्रकार के क्लेशों से रहित असग कहलाते हैं।

सिद्ध सब प्रकार के दुखों से रहित हो चुके हैं। जन्म जरा और मृत्यु के बंधन से विमुक्त है। बाधारहित और शाश्वत सुख का अनुभव करते हैं।

सिद्ध भगवान् उपमा रहित सुख के सागर में निमग्न हैं। बाधारहित तथा उपमारहित सुख को प्राप्त करके सदा के लिए सुखी बन रहते हैं।

मूल पाठ

*अत्थि णं लोए तं सव्वं दुपडोयारं तंजहा—जीवा चेव अजीवा चेव, तसा चेव, थावरा चेव, सजोणिया चेव अजोणिया चेव साउया चेव, अणाउया चेव, सइन्दिया चेव अणिन्दिया चेव, सवेयगा चेव, अवेयगा चेव, सरूवी चेव, अरूवी चेव, सपोग्गला चेव अपोग्गला चेव ससार-समावन्नगा चेव, असंसारसमावन्नगा चेव, सासया चेव, असासया चेव।

—स्थानांगसूत्र स्थान २ उद्देशा १

---

* यदस्ति लोके तत्सर्वं द्विप्रत्यवतारं तद्यथा—जीवाश्चैव अजीवाश्चैव, त्रसाश्चैव स्थावराश्चैव सयोनिकाश्चैव अयोनिकाश्चैव, सायुष्काश्चैव अनायुष्काश्चैव सेन्द्रियाश्चैव अनिन्द्रियाश्चैव सवेदकाश्चैव अवेदकाश्चैव सरूपिणश्चैव अरूपिणश्चैव सपुद्गलाश्चैव अपुद्गलाश्चैव संसारसमापन्नकाश्चैव असंसारसमापन्नकाश्चैव; शाश्वताश्चैव अशाश्वताश्चैव।

संस्कृत–व्याख्या

अन्यथा स्यादि सन्निनादिच पूर्ववत् यद' जीवादि वस्त अस्ति विद्यते मनिनि वाक्यान्तरे क्वचित् पाठो– जदत्थि च ण त्ति तत्रानुस्वार आगमिर न-न = पुनरथ एव च अस्य प्रयाग अस्त्यात्मा त्विस्तु पूर्वाध्ययनप्रकृतिकत्वात् यच्चास्ति लोके यदस्ति तावान्मके लोकप्रमीयत इति लोक इति युक्त्या नालोकरूपे वा तत्सव निरवशेष द्वयो पञ्यो स्यानयो प्रयोविवक्षितवस्तुनद्विपदय– लक्षणयोरवतारो यस्य तत् त्विपदावतारमिति। दुपडायार' त्ति क्वचित् पठ्यते तत्र द्वयो प्रत्ययवतारो यस्य तत् द्विप्रत्ययवतारमिति स्वरूपवन् प्रत्येपच्छेपय 'तद्यथे त्युदाहरणोपन्यास जीवच्चेव, अजीव च्चेव त्ति जीवाश्चवाजीवा चव प्राकृतत्वान् सयुक्तपरत्वेन ह्रस्व चकारो समुच्चयार्थो एवकारोऽवधारण, तेन च राश्यन्तरापोऽमाह नो च वाच्य राश्यन्तरमस्तीति चेव नवम् सव निषधक्त्वे नो शब्दस्य नो जीवा इत्याजीव एव प्रतीयते देशनिषधकत्वे तु जीवस्य एव प्रतीयत न च देशो देशिनोऽन्यन्त व्यतिरिक्त इति जीव एवासाविति च्चय इति वा एवकाराथ 'चिय च्चेय एवाथ इति वचनात् ततश्च जीवा एवेति विवक्षितवस्तु अजीवा एवेति च तत्प्रतिपक्ष इति, एव सवत्र अथवा यदस्ति अस्तीति यत् सन्मात्र यदिदम तद् त्विपदावतार द्विविध जीवाजीवभेदादिति भाव तथव। अथि असत्यादिषया नव सूत्र्या जीवत्वस्यव भेदात तत्प्रतिपक्षानुपूर्व्या दर्शन– तस चेवे त्यादि तत्र त्रसनाम-कर्मोदितत्रसत्व नीति त्रसा –द्वीन्द्रियादय स्थावरनामकर्मोदयात तिष्ठन्तीत्येवशीला स्थावरा पथि व्याप्य, सह या या–उत्पत्तिस्थानेन सयोनिका –ससारिणस्तद्विपर्यासभूता अयोनिका –सिद्धा सहायुषा वर्त त इति सायुषस्तद्विरहे नायुष सिद्धा एव इन्द्रिया –ससारिण, अनिन्द्रिया –सिद्धादय सवेदका स्त्रीवेदादयव त अवेदका सिद्धा

दय सन्स्थान–मूर्ता वना इति समासान्ते न् प्रत्यये सति सरूपिण सस्थानवर्णादिमन्त साशरीरा स्तथ न रूपिणाऽरूपिणो–मुक्ता सपुद्गला कर्मादिपुद्गलवन्तो जीवा सिद्धा ससार भव समापन्नका आश्रिता ससारसमापन्नका ससारिण इतरे सिद्धा शाश्वता सिद्धा जन्ममरणादिरहितत्वात् अशाश्वता —ससारिण तद्युक्तत्वादिति।

हिन्दी–भावार्थ

ससार म जो वस्तु है उसे दो विभागो म विभक्त किया जा सकता है। जैसे कि जीव और अजीव।

जीव के दो-दो भेद होते हैं। जैसे कि—त्रस और स्थावर। सयोनिक 'उत्पत्तिशील, और अयोनिक 'उत्पत्तिरहित सिद्ध) आयु वाले और आयु रहित (सिद्ध) —सेन्द्रिय इन्द्रियो वाले और अनिन्द्रिय इन्द्रियो से रहित (सिद्ध) सवेदक—स्त्री पुरुष आदि वेद से युक्त और अवेदक-वेद से रहित (सिद्ध), सरूपी—रूप रस गन्ध आदि से युक्त और अरूपी—रूप रस आदि से रहित (सिद्ध) सपुद्गल-पुद्गल युक्त और अपुद्गल पुद्गल से रहित (सिद्ध) ससारसमापन्नक ससार मे रहने वाले और असंसार समापन्नक जन्ममरण रूप ससार से विमुक्त (सिद्ध) शाश्वत-नित्य (सिद्ध) और अशाश्वत ससारी।

मूल पाठ

* अत्थि ण भंते! अकम्मस्स गती पण्णायति? हन्ता अत्थि। कह न भंते! अकम्मस्स गती पण्णायति? गोयमा! निस्संगयाए निरंगणयाए गतिपरिणामेण

*अस्ति भदन्त! अकर्मणो गति प्रज्ञायते? हन्त अस्ति।

व धणछेयणयाए निरधणयाए पुव्वप्पओगेण अकम्मस्स गती पण्णत्ता। कहन्न भंते ! निस्संगयाए निरगणयाए गइपरिणामेण बधणछेयणयाए निरंधणयाए पुव्वप्पओगेण अकम्मस्स गती पण्णायति ? स जहानामए-केइ पुरिसे सुक्क तुम्ब निच्छिड्ड निरुवहय ति आणुपुव्वीए परिकम्मेमाणे २ दब्भेहि य कुसेहि य वेढेइ २ अट्ठहि मट्टियालेवेहि लिंपइ २ उण्हे दलयति भूति २ सुक्क समाण अत्याहमतारमपोरसियसि उदगंसि पक्खिवेज्जा, से नूण गोयमा ! से तुम्बे तेसि अट्ठण्ह मट्टियालेवेण गुरुयत्ताए भारियत्ताए गुरुसभारियत्ताए सलिलतलमतिवइत्ता अह धरणितलपइट्ठाणे भवइ? हता भवइ। अहेण से तुम्बे अट्ठण्ह मट्टियालेवेण परिक्खयएण धरणितलमतिवइत्ता उप्पि सलिलतलपइट्ठाणे भवइ ?, हन्ता भवइ,

---

कथन्नु भदन्त ! अकर्मणः गतिः प्रज्ञायते ? गौतम ! निःसगतया नीरागतया गति-परिणामेन, बन्धन—छेदनतया निरिन्धनतया पूर्वप्रयोगेन अकर्मणः गतिः प्रज्ञप्ता। कथन्नु भदन्त ! निःसगतया नीरागतया, गतिपरिणामेन बन्धन छेदनतया निरिन्धनतया पूर्वप्रयोगेन अकर्मणः गतिः प्रज्ञायते ? तद्यथानाम कोऽपि पुरुषः शुष्कां तुम्बा निश्छिद्रां निरुपहतां इति आनुपूर्व्या परिकर्मयन् २ दर्भैश्च कुशैश्च वेष्टयति २ अष्टभिः मत्तिकालेपैः लिम्पति उष्णे ददाति भूयोभूयः शुष्कां सतीं अस्ताघ अतारे अपौरुषेय उदके प्रक्षिपेत्। स नून गौतम ! सा तुम्बा तेषामष्टानां मृत्तिकालेपानां गुरुतया भारितया गुरुसभारितया

एव खलु गोयमा ! निस्संगयाए निरंगणयाए, गइपरिणामेणं अकम्मस्स गई पण्णायति । कहन्न भंते ! बंधणछेदणयाए अकम्मस्स गई पण्णत्ता ? गोयमा ! से जहानामए—कलसिंबलियाइ वा मुग्गसिंबलियाइ वा माससिंबलियाइ वा सिंबलिसिंबलियाइ वा एरंडमिंजियाइ वा उण्हे दिन्ना सुक्का समाणी फुडित्ता णं एगंतमंतं गच्छइ एव खलु गोयमा ! ०। कहन्न भंते ! निरंधणयाए अकम्मस्स गति पण्णत्ता ? गोयमा ! से

सलिलतलमतिवर्त्य अधो धरणीतलप्रतिष्ठाना भवति ? हन्त भवति । अथ सा तस्याः अष्टानां मृत्तिकालेपानां परिक्षयेण धरणीतलमतिवर्त्य उपरि सलिलतलप्रतिष्ठाना भवति ? हन्त भवति । एव खलु गौतम ! निःसङ्गतया नीरागतया गतिपरिणामेन अकर्मणः गतिः प्रज्ञायते । कथन्नु भदन्त ! बन्धनछेदनतया अकर्मणो गतिः प्रज्ञप्ता ? गौतम ! तद्यथा नाम—कलायफलिका वा मुद्गफलिका वा माषफलिका वा सिंबलिफलिका वा एरण्डफलिका वा उष्णे दत्ता शुष्का सती स्फुटित्वा एकान्तमन्तं गच्छति । एव खलु गौतम ! ० । कथन्नु भदन्त ! निरिन्धनतया अकर्मणो गतिः प्रज्ञप्ता ? गौतम ! तद्यथानाम—धूमस्य इन्धनविप्रमुक्तस्य ऊर्ध्वं विस्रसया निर्व्याघातेन गतिः प्रवर्तते । एव खलु गौतम ! ० । कथन्नु भदन्त ! पूर्वप्रयोगेण अकर्मणो गतिः प्रज्ञप्ता ? गौतम ! तद्यथानाम काण्डस्य कोदण्डविप्रमुक्तस्य लक्ष्याभिमुखी निर्व्याघातेन गतिः प्रवर्तते । एव खलु गौतम ! निःसङ्गतया नीरागतया यावत् पूर्वप्रयोगेण अकर्मणो गतिः प्रज्ञप्ता ।

बंधणछेयणयाए निरंधणयाए पुव्वप्पओगेण अकम्मस्स गती पण्णत्ता। कहन्न भंते! निस्संगयाए निरंगणयाए गइपरिणामेण जाव बंधणछेयणयाए निरंधणयाए पुव्वप्पओगेण अकम्मस्स गती पण्णायति? से जहानामए-केइ पुरिसे सुक्कं तुम्बं निच्छिड्डं निरुवहयं ति आणुपुव्वीए परिकम्मेमाणे २ दब्भेहि य कुसेहि य वेढेइ २ अट्ठहिं मट्टियालेवेहिं लिंपइ २ उण्हे दलयति भूतिं २ सुक्कं समाणं अत्थाहमतारमपोरसियंसि उदगंसि पक्खिवेज्जा, से नूणं गोयमा! से तुंबे तेसिं अट्ठण्हं मट्टियालेवेणं गुरुयत्ताए भारियत्ताए गुरुसंभारियत्ताए सलिलतलमतिवइत्ता अहे धरणितलपइट्ठाणे भवइ? हंता भवइ। अहणं से तुंबे अट्ठण्हं मट्टियालेवेणं परिक्खएणं धरणितलमतिवइत्ता उप्पिं सलिलतलपइट्ठाणे भवइ?, हन्ता भवइ,

---

कथन्नु भन्ते! अकर्मणः गतिः प्रज्ञाप्यते? गौतम! निःसंगतया नीरागतया गति-परिणामेन, बन्धन-छेदनतया निरिन्धनतया पूर्वप्रयोगेन अकर्मणः गतिः प्रज्ञप्ता। कथन्नु भन्ते! निःसंगतया नीरागतया, गतिपरिणामेन बन्धनछेदनतया निरिन्धनतया पूर्वप्रयोगेन अकर्मणः गतिः प्रज्ञाप्यते? तद्यथानाम कोऽपि पुरुषः शुष्कं अलाबून निश्छिद्रम् निरुपहतम् इति आनुपूर्व्या परिकर्मयन् २ दर्भैश्च कुशैश्च वेष्टयति २ अष्टभिः मृत्तिकालेपैः लिम्पति उष्णे ददाति भूयोभूयः शुष्कं सति अस्ताघ अतारे अपौरुषेये उदके प्रक्षिपेत्। ननूनं गौतम! स अलाबुः तेषामष्टानां मृत्तिकालेपानां गुरुतया भारितया गुरुसंभारितया

एव खलु गोयमा ! निस्संगयाए निरंगणयाए, गइपरिणामेण अकम्मस्स गई पण्णायति । कहन्न भंते ! बंधणछेदणयाए अकम्मस्स गई पण्णत्ता ?, गोयमा ? से जहानामए—कलसिंबलियाइ वा मुग्गसिंबलियाइ वा मासंबलियाइ वा सिंबलिसिंबलियाइ वा एरंडमिंजियाइ वा उण्हे दिन्ना सुक्का समाणी फुडित्ता णं एगंतमंत गच्छइ एव खलु गोयमा ! ०। कहन्न भन्ते ! निरंधणयाए अकम्मस्स गति पण्णत्ता ? गोयमा ! से

सलिलतलमतिक्रम्य अधो धरणीतलप्रतिष्ठाना भवति ? हन्त भवति। अथ सा अलाबु अष्टाना मृत्तिकालेपाना परिक्षयेण धरणीतलमतिक्रम्य उपरि सलिलतलप्रतिष्ठाना भवति ? हन्त भवति। एव खलु गौतम ! निःसङ्गतया नीरागतया गतिपरिणामेन अकर्मण गति प्रज्ञायते। कथन्नु भदन्त ! बन्धनछेदनेन अकर्मणो गति प्रज्ञप्ता ? गौतम ! तद्यथा नाम—कलायफलिका वा मुद्गफलिका वा माषफलिका वा सिलिन्ध्रिफलिका वा एरण्डफलिका वा उष्णे दत्ता शुष्का सती स्फुटित्वा एकान्तमत गच्छति। एव खलु गौतम ! ०। कथन्नु भदन्त ! निरिन्धनतया अकर्मणो गति प्रज्ञप्ता ? गौतम ! तद्यथानाम—धूमस्य इन्धनविप्रमुक्तस्य ऊर्ध्व विस्रसया निर्व्याघातेन गति प्रवर्तते। एव खलु गौतम ! ०। कथन्नु भदन्त ! पूर्वप्रयोगेन अकर्मणो गति प्रज्ञप्ता ? गौतम ! तद्यथानाम कार्मणस्य शरीरविप्रमुक्तस्य लक्ष्याभिमुखी निर्व्याघातेन गति प्रवर्तते। एव खलु गौतम ! निःसङ्गतया नीरागतया यावत् पूर्वप्रयोगेन अकर्मणो गति प्रज्ञप्ता।

जहानामए अमस्स इधणनिप्पमुक्कस्स उड्ढं वीससाए निव्वाघाएण गती पवत्तति, एवं खलु गोयमा ! ०। कहन्न भंते ! पुव्वप्पओगेण अकम्मस्स गती पण्णत्ता ?, गोयमा ! स जहानामए कण्डस्स कोदण्डविप्पमुक्कस्स लक्खाभिमुही निव्वाघाएण गति पवत्तइ। एवं खलु गोयमा ! नीसंगयाए निरंगणया जाव पुव्वप्पओगेण अकम्मस्स गती पण्णत्ता।

— व्याख्याप्रज्ञप्ति १ शतक ९ उद्देशक सू० ३६८

सस्कृत—व्याख्या

गई पण्णायइ त्ति गतिः प्रज्ञायते अभ्युपगम्यत इति यावत् निस्संगयाए' त्ति निःसंगतया कर्ममलापगमेन निरंगणयाए त्ति नीरागतया मोहापगमेन गतिपरिणामेण' त्ति गतिस्वभावतया अला बुद्रव्यस्येव बंधणछेयणाए त्ति कर्मबंधनछेदनेन एरण्डफलस्येव निरंधणताए त्ति कर्मेन्धनविमोचनेन धूमस्येव पुव्वप्पओगेण त्ति सकर्मतायां गतिपरिणामवत्त्वेन बाणस्येवेति। एतदेव विवृण्वन्नाह— कहन्न भिच्चाइ निरुवहय त्ति वातादिनानुपहतं दब्भेहि य त्ति दर्भैः समूलैः कुसेहि य त्ति कुशैः दर्भैरेव छिन्नमूलैः भूइं भूइं त्ति भूयो भूयः अत्थाहं त्यादि इह सकारो प्राकृतप्रभवात् प्रस्तावस्त— एवानवतारेऽतएव अपौरुषेये अपुरुषप्रमाणे कलमसिंबलियाइ वा' कलायाभिधानधान्यफलिका सिंबलि' त्ति वल्लादि व एरण्डमिंजिया' एरण्डफलम्। एगंतमंतं गच्छइ एवं इत्येवमन्तो निश्चयो यत्रागमे वर्तत एव इत्यर्थः। अन्तमन्तं मध्यं गच्छति इह च बीजस्य गमनेऽपि (यत्) कलायादीनामित्युक्तं तत्तयोरभेदोपचारादिति।

"ङ्डन वीसमाए' त्ति अत्र विग्रग्या स्वभावन नि नाघाणण रि क्टाम्याच्छान्नाभावात् ।

हिन्दी—भावार्थ

हे भदन्त ! कर्म रहित की गति होती है ?

हा गौतम ! होती है।

हे भदन्त ! कर्म रहित की गति किस प्रकार होती है ?

हे गौतम ! कर्ममल से रहित होने के कारण राग-द्वेष से रहित होने के कारण गति-स्वभाव होने के कारण बन्धन का नाश होने से कर्मरूप इन्धन के जल जाने से पूर्व प्रयोग* के कारण कर्मरहित जीव की गति होती है।

कर्म रहित जीव की गति को एक उदाहरण से समझिए। जैसे कोई पुरुष एक निश्छिद्र अखण्डित सूखे तुम्बे को क्रमशः दर्भ (दूब) और कुशा से लपेटता है फिर माटी के आठ लेपों से उसे लीपता है, तदनन्तर उसे धूप में रखकर सुखाता है। उसके अच्छी तरह सूख जाने के पश्चात् अथाह से रहित न तर जा सकने वाले पुरुष से भी अधिक गहरे पानी में उसे डाल देता है। वह तुम्बा माटी के उन आठ लेपों के गुरु भारी और अत्यन्त भारी होने के कारण सलिल तल का उल्लघन करके नीचे पृथ्वी-तल पर जाकर ठहर जाता है किंतु जल के द्वारा माटी के लेपों के उतर जाने पर वह तुम्बा पृथ्वीतल से ऊपर उठता हुआ अन्त में पानी के ऊपर आ

* देखा गया है कि बाण को चलाने के लिए सर्वप्रथम बल लगाया जाता है, उस बल के प्रयोग से फिर वह बाण आगे सरकता है। वैसे ही निष्कर्म आत्मा शरीर से बलपूर्वक निकलता है इसी बल के प्रयोग से आत्मा में आगे गति होती है, इसी बलप्रयोग को पूर्वप्रयोग कहा जाता है।

जाता है । इसी प्रकार हे गौतम ! कर्म मल के दूर होने से, राग द्वेष से रहित हो जाने से और गति स्वभाव से कर्मरहित जीव की गति होती है ।

हे भदंत ! कर्म बन्धन से रहित होने के कारण कर्म रहित जीव की गति किस प्रकार होती है ?

हे गौतम ! जैसे कलाय की फली, मूंगों की फली, माष की फली, सिम्बलि की फली और एरण्ड की फली धूप में रख देने पर सूख जाती है, सूख कर फट जाती है, तब उस के बीज एकान्त में जा पड़ते हैं । इसी प्रकार कर्मरहित जीव की गति होती है ।

हे भदंत ! कर्मरूप इंधन के जल जाने से कर्मरहित जीव की गति किस प्रकार होती है ?

हे गौतम ! जैसे इंधन से रहित धूम्र की स्वभाव से ऊर्ध्व गति होती है उसी प्रकार कर्मरहित जीव की भी गति होती है ।

हे भदंत ! पूर्व प्रयोग के द्वारा कर्मरहित जीव की गति किस प्रकार होती है ?

हे गौतम ! जैसे धनुष से छोटे हुए लक्ष्य की ओर जाने वाले बाण की बेरोकटोक गति होती है । इसी प्रकार कर्मरहित जीव की भी गति होती है ।

मूल पाठ

* ते णं तत्थ सिद्धा हवंति सादीया अपज्जवसिया असरीरा जीवघणा दंसणनाणोवउत्ता निट्ठियट्ठा निरेयणा

---

* ते तत्र सिद्धा भवन्ति सादिका अपर्यवसिता अशरीरा

नाग्या णिम्मना वितिमिरा विसुद्धा सासयमणागयद्ध काल चिट्ठति । से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ—त ण तत्थ सिद्धा भवन्ति सादीया अपज्जवसिया जाव चिट्ठन्ति ?, गोयमा ! स जहानामए बीयाण अग्गि-दड्ढाण पुणरवि अंकुरुप्पत्ती ण भवइ, एवामेव सिद्धाण कम्मवीए दड्ढे पुणरवि जम्मुप्पत्ती न भवइ, से तेणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चइ—त ण तत्थ सिद्धा भवंति सादी-या अपज्जवसिया जाव चिट्ठन्ति ।

—औपपातिक सूत्र सिद्धाधिकार

संस्कृत—व्याख्या

त ण तत्थ सिद्धा हवति त्ति ते पूर्वोद्दिष्टविशेषणा मनुष्या तत्र लोकाग्रे निष्ठितार्था स्युरिति मनन च संस्कृतव्याख्यायाम् उक्त—

रागादिवासनामुक्त चित्तमत्र निरामयम् ।
सदाऽनियतदेशस्थ सिद्ध इत्यभिधीयते ॥१॥

यच्चापर भण्यते—

जीवघना दर्शनज्ञानोपयुक्ता निष्ठितार्था निरेजना नीरजस, निर्मला वितिमिरा विशुद्धा शाश्वतीमनागताद्धां काल तिष्ठन्ति । तत् केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते—ते तत्र सिद्धा भवन्ति सादिका अपर्यवसिता यावत्तिष्ठन्ति ? गौतम ! तद्यथानाम बीजानामग्निदग्धा-नां पुनरपि अंकुरोत्पत्तिर्न भवति एवमेव सिद्धानां कर्मबीजे दग्धे पुनरपि जन्मोत्पत्तिर्न भवति । तत्तेनार्थेन गौतम ! एवमुच्यते—ते तत्र सिद्धा भवन्ति सादिका अपर्यवसिता यावत् तिष्ठन्ति ।

गुणसत्वान्तरज्ञानानिवृत्त प्रकृति क्रिया ।
मुक्ता सर्वत्र तिष्ठन्ति व्यामवत्तापवर्जिता ॥१॥

अन्यत्र निरस्त पञ्चोच्यत-शरीरतायामपि सिद्धत्वप्रतिपादनाय,

यच्च —

अणिमाद्यष्टविध प्राप्यश्वर्य यतिन सदा ।
मोदन्त निवृ तात्मानस्तीर्णा परमदुस्तरम् ॥ १॥

इति तदपाकरणायाह— अशरीरा' अविद्यमान-पञ्चप्रकारशरीरा, तथा जीवघण ति योगनिरोधकाल रन्ध्रपूरणन त्रिभागोनाऽवगाहना सत्ता जीवघना इति दसणनाणावउत्त त्ति ज्ञान साकार, दर्शनम्— अनाकार तया श्रमणोपयुक्ता ये त तथा निट्ठियट्ठ त्ति निष्ठितार्था — समाप्तसमस्तप्रयोजना निरेयण' त्ति निरेजना —निश्चला नीरय' त्ति नीरजसा बध्यमानकर्मरहिता नारया वा—निगतोत्सुकया निम्मल' त्ति निर्मला पूर्वबद्धकर्मविनिर्मुक्तता द्रव्यमलवर्जिता वा वितिमिर' त्ति विगताज्ञाना विसुद्ध' त्ति कर्मविशुद्धिप्रकर्षमुपगता सासयमणा गयद्ध काल चिट्ठति शाश्वतीम्—अविनश्वरी सिद्धत्वस्याविनाशात् अनागताद्धा भविष्यत्काल तिष्ठ तीति जम्मुप्पत्ती ति जन्मना कम कृतप्रसूत्या उत्पत्तिर्या सा तथा, ज मग्रहणन परिणामान्तरप्राप्त्युत्पत्ति भवतीत्याह प्रतिक्षणमुत्पादव्ययध्रौव्य युक्तत्वात्तद्भाव्यपेति ।

हिन्दी–भावार्थ

सिद्ध जीव मुक्ति म विराजमान हैं व मुक्ति म जान की अपेक्षा स सादि हैं, मुक्ति से कभी वापिस नहा आत हैं इसलिए वे अनन्त हैं औदारिक वक्रिय आदि पञ्चविध शरीरा स रहित हैं पोलार से रहित आत्मप्रदेश जाल है दर्शन और ज्ञान रूप उपयोग के धारक हैं कृतकृत्य हैं कम्पन म रहित हैं कमरूप रज और मल स रहित हैं अज्ञान रूप अधकार से रहित हैं,

सब प्रकार की विशुद्धि से युक्त है अनन्त भविष्यतकाल तक मुक्ति मे विराजमान रहने वाले है।

हे भगवन्! मुक्ति म विराजमान सिद्धो को सादि, अनन्त आदि कहने का क्या कारण है?

हे गौतम! जसे अग्नि से दग्ध बीजा म पुन अकुरोत्पत्ति नही होने पाती है इसी प्रकार कर्म-बीज के दग्ध हान पर सिद्धा की भी पुन जन्मोत्पत्ति नही होती है। इसालिए कहा गया है कि मुक्ति मे विराजमान सिद्ध सादि अनन्त अशरीरी जावघन आदि शब्दा से व्यवहृत हाते हैं।

मूल पाठ

* जीवा ण भते! सिज्झमाणा कयरंमि सघयणे सिज्झति? गोयमा! वइरोसभनारायसघयणे सिज्झति।

हिन्दी-भावार्थ

गौतम स्वामी बोले—भगवन! सिध्यमान (सिद्धि को प्राप्त हो रहे) जाव किस सहनन म सिद्ध होत हैं?

भगवान बोले—गौतम! वज्रऋषभनाराच नामक सहनन मे सिद्ध हाते हैं।

---

* जीवा भदन्त! सिध्यन्त कतरस्मिन सहनने सिध्यन्ति? गौतम! वज्रऋषभनाराचसहनन सिध्यन्ति।

मूल पाठ

* जीवा ण सिज्झमाणा कयरम्मि संठाणे सिज्झंति ?

गोयमा ! छण्हं संठाणाणं अण्णतरे संठाणे सिज्झंति ।

हिन्दी-भावार्थ

गौतम स्वामी पूछते—भगवन् ! सिध्यमान (सिद्ध पद प्राप्त हो रहे) जीव किस संस्थान से सिद्ध होते हैं ?

भगवान बोले—गौतम ! छह संस्थानों में से किसी भी एक संस्थान में सिद्ध होते हैं ।

मूल पाठ

† जीवा णं भंते ! सिज्झमाणा कयरम्मि उच्चत्ते सिज्झन्ति ? गोयमा ! जहण्णेणं सत्तरयणीओ उक्कोसेणं पञ्चधणुस्सए सिज्झन्ति ।

संस्कृत-व्याख्या

जहण्णेण सत्तरयणीए' त्ति सप्तहस्ते उच्चत्वे सिध्यन्ति । महावीरवत् उक्कोसेण पचधणुस्सए' त्ति ऋषभस्वामिवत् एतच्च द्वयमपि तीर्थङ्करापेक्षयोक्तम् अतो द्विहस्तप्रमाणाः कूर्मापुत्रप्रभृतयो न व्यभिचारी न वा मरुदेव्या सातिरेकपञ्चधनुःशतप्रमाणा'पीति ।

---

* जीवा भदन्त सिध्यन्तः कतरस्मिन् संस्थाने सिध्यन्ति ? गौतम ! ... सिध्यन्ति ।

† ... सिध्यन्ति ? गौतम !

हिन्दी–भावार्थ

गौतम स्वामी बोले—भगवन् ! सिध्यमान जीव कितनी ऊंचाई में सिद्ध होते हैं ?

भगवान बोले गौतम ! जघन्य (कम से कम) सात हाथ की ऊंचाई में और उत्कृष्ट (अधिक से अधिक) पांच सौ धनुष की ऊंचाई में जीव सिद्ध होते हैं।

मूल पाठ

* जीवाणं भंते ! सिज्झमाणा कयरम्मि आउए सिज्झन्ति? गोयमा ! जहण्णेणं साइरेगट्ठवासाउए उक्कोसेणं पुव्वकोडियाउए सिज्झन्ति।

संस्कृत–व्याख्या

साइरेगट्ठवासाउए त्ति सातिरेकाण्यष्टौ वर्षाणि यस्य तस्तथा तच्च तदायुश्चेति तत्र सातिरेकाष्टवर्षायुषि तत्र हि नाष्टवर्षवयाश्चरण प्रतिपद्यते ततो वर्षे प्रतिगते केवलज्ञानमुत्पाद्य सिध्यतीति ! उक्कोसेणं पुव्वकोडीआउए त्ति पूर्वकोट्यायुनर पूर्वकोट्या अन्ते सिध्यतीति न परत।

हिन्दी–भावार्थ

गौतम स्वामी बोले—भगवन् ! सिध्यमान जीव कितनी आयु में सिद्ध होते हैं ?

भगवान बोले—गौतम ! जघन्य कुछ अधिक आठ वर्ष की

---

* जीवा भन्ते ! सिध्यन्त कतरस्मिन् आयुषि सिध्यन्ति? गौतम! जघन्येन सातिरेकाष्टवर्षायुष्का उत्कर्षेण पूर्वकोटिकायुष्का सिध्यन्ति।

आयु वाले तथा उत्कृष्ट करोड पूर्व की आयु वाले जीव सिद्ध होते हैं।

मूल पाठ

* अत्थि ण भंते ! इमीसे रयणप्पहाए पुढवीए अहे सिद्धा परिवसन्ति ? णो इणट्ठे समट्ठे, एवं जाव अहे सत्तमाए।

संस्कृत-व्याख्या

तं णं तत्थ सिद्धा भवंती त्ति प्राक्तनवचनाद् यद्यपि साक्षात् सिद्धानां स्थानमित्यवसीयते तथापि मुग्धविनेयस्य कल्पितविविधलोकान्तनिरासतो निरुपचरितलोकाग्रदेशरूपविशिष्टावबोधाय प्रश्नोत्तरसूत्रमाह—अत्थि णं मित्यादि व्यक्तं नवरं यदि रत्नप्रभाया अधस्तदेव लोकाग्रमिति तत्र सिद्धाः परिवसन्तीति प्रश्नः तत्रोत्तर—नायमर्थः समर्थ इति एवं सर्वत्र।

हिन्दी-भावार्थ

गौतम स्वामी बोले—भगवन् ! क्या इस रत्नप्रभा नामक पृथ्वी (नरक) के नीचे सिद्ध रहते हैं ?

भगवान बोले—गौतम ! रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे सिद्ध नहीं रहते हैं। इसी प्रकार यावत सातवीं पृथ्वी के नीचे भी सिद्ध नहीं रहते हैं।

---

* अस्ति भन्त ! अस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्या अधः सिद्धाः परिवसन्ति ? नायमर्थः समर्थः, एवं यावत् अधः सप्तम्याः।

* अत्थि ण भत ! सोहम्मस्स कप्पस्स अहे सिद्धा परिवसंति ? णो इणटठे समट्ठे, एव सव्वेसि पुच्छा। ईसाणस्स, सणकुमारस्स जाव अच्चुयस्स गविज्जविमाणाण अणुत्तरविमाणाण ।

हिन्दी–भावार्थ

गौतम स्वामी न पूछा भगवन ! क्या सिद्ध सौधम नाम प्रथम दवलाक के नीचे रहत है ?

भगवान न कहा—गौतम ! नही रहते है ।

जिस प्रकार प्रथम दवलाक के सम्बन्ध मे पच्छा की गई है उसा प्रकार ईशान सनत्कुमार यावत अच्युत, ग्रवयक विमान तथा अनुत्तर विमाना क सम्बन्ध मे भी पच्छा की गइ और भगवान न सब के सम्बन्ध म 'नही रहत हैं यही उत्तर दिया ।

मूल पाठ

‡ अत्थि भते ! ईसीपब्भाराए पुढवाए अहे सिद्धा परिवसंति ? णो इणट्ठ समटठे ।

---

* अस्ति भदन्त ! सौधमस्य कल्पस्य अध सिद्धा परिवसन्ति ? नायमथ समथ एव सर्वेषा पच्छा । ईशानस्य सनत्कुमारस्य यावद च्यतस्य ग्रवेयकविमानानाम् अनुत्तरविमानानाम् ।

‡ अस्ति भदन्त ! ईषत्प्राग्भाराया पथ्व्या अध सिद्धा परिवसन्ति ? नायमथ समथ ।

हिन्दी-भावार्थ

गौतम स्वामी बोले—भगवन् ! ईषत्प्राग्भारा (सिद्धशिला) के नीचे क्या सिद्ध स्थान है ?

भगवान बोले—गौतम ! नहीं रहते हैं ।

मूल पाठ

*से कहि खाइ णं भंते ! सिद्धा परिवसन्ति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पहाए पुढवीए बहुसम-रमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिम-सूरिय-गह-गण-णक्खत्त-तारा भवणाओ बहूइं जोयणसयाइं बहूइं जोयणसहस्साइं बहूइं जोयणसयसहस्साइं बहूओ जोयणकोडीओ बहूओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढतरं उप्पइत्ता सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंभ-लंतग-महासुक्क-सहस्सार-आणय-पाणय-आरणच्चुय तिण्णि य अट्ठारे गेविज्जविमाणावासमए वीइवइत्ता विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजिय-सव्वट्ठसिद्धस्स य महाविमाणस्स सव्व-उप-रिल्लाओ थूभियग्गाओ दुवालस-जोयणाइं अबाहाए एत्थ णं ईसीपब्भारा णाम पुढवी पण्णत्ता पणयालीस जोयण-सय सहस्साइं आयाम विक्ख-

---

*अथ कुत्र भदन्त ! सिद्धा परिवसन्ति ? गौतम ! अस्यां रत्नप्रभायां पृथिव्यां बहुसमरमणीयाद् भूमिभागाद् ऊर्ध्वं चन्द्र-सूर्य ग्रह-गण

भण एगा जायणकाडी ज्ञायानीम सयसहस्साइ तीस च सहस्साइ दोण्णी य अउणापण्ण जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिरएण, ईसिपब्भारा य ण पुढवीए बहु-मज्भदेसभाए अट्ठ जोयणिए खेत्ते अट्ठ जोयणाइ बाहल्लेण, तयाणतर च ण मायाए मायाए पडिहाएमाणी पडिहाएमाणी सव्वसु चरिमपरतेसु मच्छियपत्ताओ तणु-यतरा अगुलस्स असखेज्जइभाग बाहल्लण पण्णत्ता।

ईसीपब्भाराए ण पुढवीए दुवालस णामधेज्जा पण्णत्ता तजहा–ईसी इ वा, इसीपब्भारा इ वा, तणू इ वा, तणू-तणू इ वा, सिद्धी इ वा, सिद्धालए इ वा, मुत्ति इ वा मुत्तालए इ वा, लोयग्गे इ वा, लोयग्गथूभिया इ वा, लोयग्गपडिवुज्झणा इ वा, सव्व-पाण-भूय जीव-सत्त-सुहावहा इ वा।

सप्त नारा भवनभ्यो बहूनि योजनशतानि बहूनि योजन सहस्राणि बहूनि योजन शत सहस्राणि बह्वी योजनकोटी बह्वी योजनकोटाकोटी ऊर्ध्वतरमुत्पत्य सौधर्मेशान सनत्कुमार माहेन्द्र ब्रह्म-लान्तक महाशुक्र सहस्रार आनत प्राणत आरणाच्युतान् त्रीणि च अष्टादश ग्रैवेयक विमानावास शतानि व्यतिव्रज्य विजय वैजयन्त जयन्त अपराजित सर्वार्थसिद्धस्य च महाविमानस्य सर्वोपरितनाया स्तूपिकाग्राया द्वादश-योजनानि अबाधया अत्र ईषत्प्राग्भारा नाम पृथ्वी प्रज्ञप्ता, पञ्चचत्वारिंशद्योजन शतसहस्राणि आयामविष्कम्भेण एका योजनकोटि द्विचत्वा

ईसीपब्भारा ण पुढवी सेया सख–तल–विमल–सोल्लिय–मुणाल–दग–रय–तुसार–गोक्खीर–हार–वण्णा उत्ताणय–छत्त–संठाण–संठिया सव्वज्जुण–सुवण्णमई अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा णीरया णिम्मला णिप्पंका णिक्ककडच्छाया समरीचिया सुप्पभा पासादीया दरिसणिज्जा अभिरुवा पडिरुवा, ईसीपब्भाराए ण पुढवीए सीयाए जोयणमि लोगंते, तस्स जोयणस्स जे से उवरिल्ले गाउए, तस्स ण गाउअस्स जे से उवरिल्ले छब्भागिए, तत्थ ण सिद्धा भगवंतो

रिंशत् शतसहस्राणि त्रिंशच्च सहस्राणि द्वे च एकोनपञ्चाशत् योजनशतानि किञ्चिद्विशेषाधिकानि परिरयेण ईषत्प्राग्भारायाः पृथिव्या बहुमध्यदेशभाग अष्टयोजनके क्षेत्र अष्टयोजनानि बाहल्येन सदाऽनन्तर च मात्रया मात्रया परिहीयमाना-परिहीयमाना सर्वेषु चरमपर्यन्तेषु मक्षिका पत्रात् तनुतरा अङ्गुलस्यासंख्येयभागं बाहल्येन प्रज्ञप्ता ।

ईषत्प्राग्भारायाः पृथिव्याः द्वादश नामधेयानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा–ईषद् इति वा, ईषत्प्राग्भारा इति वा तनू इति वा तनुतनु इति वा सिद्ध इति वा, सिद्धालय इति वा, मुक्तिरिति वा मुक्तालय इति वा लोकाग्रमिति वा लोकाग्रस्तूपिका इति वा लोकाग्रप्रतिबोधना इति वा सर्व प्राण भूत जीव सत्त्व सुखावहा इति वा । ईषत्प्राग्भारा पृथिवी श्वेता शङ्खतलविमल-सोल्लिय मृणाल दक रज -तुषार गोक्षीर हारवर्णा, उत्तान-छत्र-संस्थानसंस्थिता सर्वार्जुनसुवर्णमयी अच्छा श्लक्ष्णा मसृणा घृष्टा मृष्टा नीरजा निर्मला निष्पंका निष्कंकट-च्छाया, समरीचिका,

सासया अपज्जवसिया अणेग–जाइ–जरा–मरण-जोणि वेयण–संसारकलंकली भावपुणब्भव–गब्भ-वास-वसही-पवंच-समइक्कंता सासयमणागयमद्धं चिट्ठन्ति ।मू०४३।

—औपपातिक सूत्र सिद्धाधिकार

संस्कृत–व्याख्या

स वहिं खाइ ण भन '' त्ति इत्यत्र सत्ति-नत वहिं नि-स्व दो माइ ण ति—ऐणभावगा वाक्यालंकारे 'बहुसमे त्यादि बहुसम त्वेन रमणीया य स तया तस्मात् अवाहाए त्ति अबाधया अन्तरेण ईसिपब्भार' त्ति ईषद्—अल्पो न रत्नप्रभादिपृथिव्या इव महान प्राग्भारो-महत्त्व यस्या सा ईषत्प्राग्भारा । नामधेयानि व्यक्तान्येव नवर ईसिति वा ईषत् अल्पा पथिव्यन्तरापेक्षया इति शब्द व्यपदेशन वा शब्दा विकल्प 'नायगपडिबुज्झणा इ व त्ति सोत्प्रेक्षमिति प्रतिबुध्यत अवसायते यया सा तथा सव्व-पाण भूय-जीव-सत्त सुहावह त्ति इह प्राणा द्वीन्द्रियाद्य भूता-वनस्पतय जीवा-पञ्चेन्द्रिया पृथिव्यादयस्तु-सत्त्व एतेषां च पृथिव्याश्रिया तत्रोत्पन्नाना सा सुखावहा शीतादिदुःखहेतूनामभावादिति, सेय त्ति श्वेता एतदेवाह आयसतल–विमल सोत्थिय–मुणाल–दग रय-तुसार–गोक्खीर-

---

प्रभा प्रासादीया दर्शनीया अभिरूपा प्रतिरूपा ईषत्प्राग्भाराया पृथिव्या श्वेताया योजन लोकान्त, तस्य योजनस्य यत्तद् उपरितन क्रोशस्तस्य गव्यूतस्य य स उपरितन षड्भागः, तत्र सिद्धा भगवन्त सादिका अपर्यवसिता अनेक-जाति जरा-मरण-योनि-वेदना-संसार संकलीभाव-पुनर्भव-गर्भवास-वसति प्रपञ्चसमतिक्रान्ता शाश्वतीमनागतामद्धा तिष्ठन्ति ।

हार वण्ण त्ति व्यक्तमेव नवरम् धाम्नतद्य दघाननं ववविष्टहँ तलमिति पाठ आम्नातनमिव विमला या सा तथा मालिय त्ति कुसुमविनाय सव्वउज्जुणसुवण्णमई' ति अजु नसुवण्ण दवेतकाञ्चन मवत्ता मात्रानरपदिवमिव मण्ह त्ति श्लक्ष्णपरमाणुरक निर्वर्तना दतश्व न तुनिष्पन्नपटवल नण्ह त्ति मसणा घुण्टितपटवत् घट्ठ' त्ति मटेव घष्टा खरशानया पाषाणप्रतिमावत् मट्ठ त्ति मृष्ट मटा सुकुमारशानया प्रतिमेव शोधिता वा प्रमार्जनिकया अत एव णीरय' त्ति नीरजा —रजोरहिता णिम्मला कठिनमलरहिता णिप्पंक' त्ति निष्पंका आर्द्रमलरहिता अवलका वा णिक्कंकडच्छाय त्ति निक्कङ्कटा निष्कवचा निरावरणतयेय छाया शोभा यस्या सा तथा अवलक्त शोभा वा, समरीचिय त्ति समरीचिका किरणयुक्ता अतएव सुप्पभ त्ति सुष्ठु प्रकर्षेण च भाति शोभत या सा सुप्रभेति पासादीय' त्ति प्रासादो-मन प्रमोद प्रयोजन यस्या सा प्रासादीया दरसणिज्ज त्ति दर्शनीय चक्षुर्व्यापाराय हिता दर्शनीया ता पश्यच्चक्षुन श्राम्यता त्यथ अभिरूव' त्ति अभिमत रूप यस्या सा अभिरूपा कमनीयरूपेत्यथ, पडिरूव त्ति द्रष्टार द्रष्टार प्रति रूप यस्या सा प्रतिरूपा जायणमि लागत' त्ति इह योजनमु सेधाङ्गुलयोजनमवसेय तदायरयव हि मानाप माणस्य सविभागत्र्यस्त्रिशाग्धिकधनु शतमयीप्रमाणत्वात्ति, अणेग जाइ–जरा–मरण–जोणिवयण अनेकजातिजरामरणप्रधानयोनि वेदना यत्र स तथा त ससार कलकलीभाव–पुणब्भव गब्भ वास वसही-पवचमइक्कता ससारे कलङ्कलीभावेन असमञ्जसत्वेन पुनर्भवा —पौन पुन्येनोत्पादा गर्भवासवसतयश्च गर्भाश्रयनिवासास्तास प्रपञ्चो— विस्तर स तथा तमतिक्रान्ता निस्तीर्णा पाठान्तरमिदम् —अणेग-जाइ-जरा मरण जोणि–ससार–कलकली–भाव–पुण ब्भवगब्भवास वसहिपवचसमइक्कत। तिअनेक-जाति जरामरण प्रधा

य नरा यत्र स तथा स चासौ समारम्भनि समाम तत्र एतत्सीभावव य पृथभवन—पुनःपुनरम्भरदा त्मवानवत्तनीना ग्रपञ्चरत स्थनिश्चल्ना। ये त तथा। (अभयदेवसूरिकृत वृत्ति)

हिन्दी-भावार्थ

श्री गौतम स्वामी ने पूछा—हे भगवन्! सिद्ध कहा पर रहते हैं?

भगवान् बोले—हे गौतम! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अत्यन्त समतल एवं रमणीय भूमिभाग से ऊपर चन्द्रमा, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारागण के भवन हैं। उन से सैकड़ों, हजारों, लाखों, करोड़ों, कोटाकोटियों योजन ऊपर जाकर सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत नामक देवलोक है। इन के ऊपर तीन सौ १८ ग्रैवेयक विमान हैं। इन से ऊपर विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित, सर्वार्थसिद्ध ये महाविमान हैं। सर्वार्थसिद्ध महाविमान की ऊपर की स्तूपिका के अग्रभाग से १२ योजन की दूरी पर ईषत्प्राग्भारा (सिद्धशिला) नामक पृथ्वी है जो कि ४५ लाख योजन की लम्बी और इतनी ही चौड़ी है। इस की परिधि (घेरा) एक करोड़ बयालीस लाख तीस हजार दो सौ उनचास योजन से कुछ अधिक है। ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के सममध्यप्रदेश में आठ योजन का क्षेत्र आठ योजन की मोटाई वाला है। इस में आगे क्रमशः थोड़ी थोड़ी हीन होती हुई अन्त में मक्खी के पंख से भी अधिक तनुतर (सूक्ष्मतर) तथा अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी इस की मोटाई रह जाती है।

ईषत्प्राग्भारा पृथिवी को १२ नामों से व्यवहृत किया जाता है। वे नाम इस प्रकार हैं—

१ ईषत्, २ ईषत्प्राग्भारा, ३ तनु,
४ तनुतनु ५ सिद्धि, ६ सिद्धालय
७ मुक्ति, ८ मुक्तालय, ९ लोकाग्र
१० लोकाग्रस्तूपिका, ११ लोकाग्रप्रतिबोधना,
१२ सर्वप्राणभूत जीव-सत्त्व-सुखावहा।

ईषत्प्राग्भारा पृथिवी श्वेत है शंखतल के समान विमल निर्मल है सोत्तिय (पुष्पविशेष) मृणाल-कमल नाल, दकरज-पानी का भाग तुषार श्रोसबिंदु गोक्षीर गाय का दूध हार (मोतियों का हार) के समान श्वेत वर्ण वाली है। छत्र को उलटा करके रखने से उसका जो आकार बनता है वही आकार ईषत्प्राग्भारा पृथिवी का होता है। ईषत्प्राग्भारा पृथिवी सारी की सारी श्वेत सुवर्णमयी है वह स्वच्छ है श्लक्ष्ण चिकनी है मसृण है—दूमरी किए हुए वस्त्र के समान कोमल है घृष्ट है—घिसे हुए पाषाण के समान स्पर्श वाली है, मृष्ट है—चोकना है चमकदार है नीरज है—धूलिरहित है निर्मल है मलरहित है निष्पंक है, कीचड़ रहित है।

ईषत्प्रभाग्भारा पृथिवी स्निग्धछाया वाली है किरणों से युक्त है अच्छी-प्रभा कांति वाला है चित्ताकर्षक है दर्शनयोग्य है सुंदर है अत्यन्त सुंदर है।

ईषत्प्राग्भारा पृथिवी के एक योजन ऊपर लोकान्त है। उस योजन के ऊपर के कोस के छठे भाग में सिद्ध भगवान विराजमान हैं। वे सिद्ध सादि अनन्त जन्म जरा मृत्यु और योनि (उत्पत्तिस्थान) की नानाविध वेदना से रहित हैं। संसार के कलंकलीभाव (विषमता) पुनर्भव-पुन पुन उत्पन्न होना,

गर्भावास गर्भ में निवास करना, इन सब प्रपंचों से वे रहित हैं। सिद्ध भगवान भविष्यत्काल में सदा के लिए मोक्ष में विराजमान रहेंगे।

मूल पाठ

*अत्थि एगं धुवं ठाणं, लोगग्गंमि दुरारुहं ।
जत्थ नत्थि जरा मच्चू, वाहिणो वेयणा तहा ॥

—उत्तराध्ययन सूत्र अ० २५/८१

संस्कृत-व्याख्या

अस्त्येकमन्तीय ध्रुवं शाश्वतं स्थानं लोकाग्रे दुरारुहं ति दुःखेनारुह्यतेऽध्यास्यत इति दुरारोहम्। दुरापेणैव सम्यग्दर्शनादित्रयेन तस्य प्राप्यत्वात्। यत्र न सन्ति जराऽऽदीनि प्रतीतानि वेदना शारीरादिपीडा तस्य व्याध्यभावेन क्षमत्वं जरा मरणाभावेन शिवत्वं वेदनाऽभावतो बाधावियुक्तमिति यथायोगं भावनीयम्।

हिंदी-भावार्थ

लोक के अग्रभाग में एक ध्रुव नित्य स्थान है जिस पर आरोहण करना अत्यन्त कठिन है। उस स्थान में अवस्थित आत्मा को न जरा-बुढ़ापा है न मृत्यु है, न व्याधियाँ हैं और न बाह्य वेदनाएं होती हैं।

---

* अस्त्येकं ध्रुवं स्थानं लोकाग्रे दुरारोहं ।
यत्र नास्ति जरा मृत्युः व्याधयो वेदनास्तथा ॥

मूल पाठ

* निव्वाण ति अवाह ति सिद्धी लोगग्गमेव य।
खेम सिव अणावाह, ज तरति महेसिणो ॥

संस्कृत—व्याख्या

निर्वान्ति कर्माग्निविध्यापनाच्छीतीभवन्त्यस्मिन्निति निर्वाणं इति दा— स्वल्पप्रभावा यद्यपि नास्ति तथाप्यध्याहार्य ततः 'उच्यते इत्यध्याहृत्य' निर्वाणमिति यदुच्यते अबाधमिति यदुच्यते सिद्धिरिति यदुच्यते, लोकाग्रमिति यदुच्यते इति व्याख्येयम्। क्षेम शिवमनाबाधमिति च प्राग्वत्। यान्ति यत स्थान विभक्तिव्यत्ययाद यत्र स्थाने वा तरन्ति प्लवन्ते गच्छन्तीत्यर्थः महर्षयो महामुनयः।

हिन्दी—भावार्थ

जिस स्थान को महर्षि लोग प्राप्त करते हैं उस स्थान को निर्वाण, अबाध सिद्ध लोकाग्र, क्षेम शिव और अनाबाध कहा जाता है।

मूल पाठ

‡ त ठाण सासयवासं, लोगग्गमि दुरारुह।
ज सम्पत्ता न सोयन्ति भवोहन्तकरा मुणी ॥

—उत्तराध्ययन अ २३-८४

---

* निर्वाणमिति अबाधमिति सिद्धि लोकाग्रमेव च।
क्षेम शिवमनाबाध यत्तरन्ति महर्षयः ॥

‡ तत्स्थान शाश्वतवास लोकाग्र दुरारोह।
यत् सम्प्राप्ता न शोचन्ति भवौघान्तकरा मुनयः ॥

संस्कृत-छाया

[illegible]

हिन्दी-भावार्थ

उस स्थान में जीव सदा के लिए सिद्ध रहते हैं, वह स्थान लोक के अग्रभाग पर स्थित है, दुरारोह है अर्थात् उस पर आरोहण करना कठिन है। उस स्थान को प्राप्त करने पर [illegible] कभी वापिस नहीं होते हैं तथा भवप्रवाह का अन्त करने वाले मुनि उसे प्राप्त करते हैं।

मूल पाठ

* सिद्धा णं भंते ! किं वड्ढंति, हायंति, अवट्ठिया ?
गोयमा ! सिद्धा वड्ढंति, नो हायंति, अवट्ठिया।

—भगवतीसूत्र शतक ५ उ० ८

हिन्दी-भावार्थ

भगवान गौतम बोले— भगवन् ! क्या सिद्ध बढ़ते हैं? घटते हैं अथवा अवस्थित रहते हैं अर्थात् न बढ़ते हैं और न घटते हैं?

भगवान महावीर बोले—गौतम ! सिद्ध बढ़ते हैं घटते नहीं

---

* सिद्धा भदन्त ! किं वर्धन्ते, हीयन्ते, अवस्थिताः ?
गौतम ! सिद्धा वर्धन्ते नो हीयन्ते [illegible]।

र अवस्थित भी रहते हैं।

मूल पाठ

मिद्धा ण भंते ! केवइय काल वड्ढति ?

गोयमा ! जहण्णेण एक्कं समयं, उक्कोसेण अट्ठसमया !

हिन्दी-भावार्थ

भगवान गौतम बोले—भगवन् ! सिद्ध कितने काल तक रहते हैं ?

भगवान महावीर बोले—गौतम ! कम से कम एक समय तक और अधिक से अधिक आठ समय तक।

मूल पाठ

† सिद्धा ण भंते ! केवइय काल अवट्ठिया ?

गोयमा ! जहण्णेण एक्कं समयं, उक्कोसेण छम्मासा।

हिन्दी-भावार्थ

भगवान गौतम बोले—भगवन् ! सिद्ध कितने काल तक अवस्थित रहते है ?

भगवान महावीर बोले—गौतम ! कम से कम एक समय तक और अधिक से अधिक छह मास तक।

---

* सिद्धा भदन्त ! कियन्तं कालं वर्धन्ते ?
गौतम ! जघन्येन एकं समयमुत्कर्षेण अष्ट समयान्।

† सिद्धा भदन्त ! कियन्तं कालमवस्थिता ?
गौतम ! जघन्येन एक समयमुत्कर्षेण षण्मासान्।

मूल पाठ

* सिद्धा ण भंते ! किं सोवचया, सावचया, सोवचय-सावचया, णिरुवचयणिरवचया ?

गोयमा ! सिद्धा सोवचया, णो सावचया, णो सावचयसावचया, णिरुवचयणिरवचया।

हिन्दी–भावार्थ

भगवान गौतम बोले—भगवन् ! सिद्ध क्या सोपचय—वृद्धि वाले हैं सापचय हैं—हानि वाले हैं सापचयसापचय हैं—वृद्धि और हानि वाले हैं तथा निरुपचय निरपचय हैं—वृद्धि तथा हानि वाले नहीं हैं ?

भगवान महावीर बोले—गौतम ! सिद्ध सोपचय हैं, सापचय नहीं हैं सापचय-सापचय नहीं हैं तथा निरुपचय निरपचय हैं।

मूल पाठ

† सिद्धा ण भन्ते ! केवइय काल सोवचया ?

गोयमा ! जहण्णेण एग समय, उक्कोसेण अट्ठसमया।

---

* सिद्धा भदन्त ! किं सोपचया सापचया सोपचयसापचया, निरुपचयनिरपचया ?

गौतम ! सिद्धा सोपचया नो सापचया, नो सोपचय-सापचया निरुपचयनिरपचया

† सिद्धा भदन्त ! कियन्त काल सोपचया ?

गौतम ! जघन्येन एक समयमुत्कर्षेण अष्टसमयान् ।

भगवान गौतम बोले—भगवन ! सिद्ध कितने काल तक सोपचय-वृद्धि वाले होते हैं ?

भगवान महावीर बोले—गौतम ! कम से कम एक समय तक और अधिक से अधिक आठ समय तक ।

मूल पाठ

* सिद्धा ण भंते ! केवइय काल णिरवचयणिरवचया ?

गोयमा ! जहण्णेण एग समय उक्कोसेण छम्मासा ।

हिन्दी–भावार्थ

भगवान गौतम बोले—भगवन् ! सिद्ध कितने काल तक निरुपचय निरपचय हैं एवं साथ वृद्धि हानि से रहित हैं ।

भगवान महावीर बोले—गौतम ! कम से कम एक समय तक और अधिक से अधिक छह मास तक । अर्थात इतने काल तक सिद्ध अवस्थित रहते हैं ।

※ परमात्मा अनादि है ※

मूल पाठ

† तेण कालेण तेण समएण समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी रोहे णाम अणगारे पगइ–भद्दए पगइ-मउए पगइ-विणीए पगइ-उवसते पगइ-पयणुकोह-

---

* सिद्धा भदन्त ! कियन्त काल निरुपचयनिरपचया ?
गौतम ! जघन्येन एक समयमुत्कर्षेण षण्मासान् ।

† तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अन्ते

माण माया-लोभे मिउ-मद्दव-संपन्ने अल्लीणे भद्दए वि-
णीए समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूर-सामंते उड्ढं-
जाणू अहोसिरे झाण-कोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं
भावेमाणे विहरइ। तए णं से रोहे णामं अणगारे जाय-
सड्ढे जाव पज्जुवासमाणे एवं वदासी—

पुव्विं भंते! लोए, पच्छा अलोए? पुव्विं अलोए पच्छा लोए?

रोहा! लोए य अलोए य पुव्विं पेते, पच्छा पेते। दोवि एए सासया भावा अणाणुपुव्वी एसा रोहा!।

पुव्विं भंते! जीवा, पच्छा अजीवा पुव्विं अजीवा पच्छा जीवा? जहेव लोए य अलोए य तहेव जीवा य

ततो रोहो नाम अनगारः प्रकृतिभद्रकः प्रकृतिमृदुकः प्रकृतिविनीतः प्रकृत्युपशान्तः प्रकृतिप्रतनुक्रोध-मान-माया-लोभः मृदुमार्दवसम्पन्नः आलीनः, भद्रकः विनीतः श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अदूरसामन्ते ऊर्ध्वजानुः, अधःशिराः ध्यानकोष्ठोपगतः संयमेन तपसा आत्मानं भावयन् विहरति। ततः स रोहो नाम अनगारः जातश्रद्धः यावत् पर्युपासमानः एवमवदत्—

पूर्वं भन्त! लोकः पश्चाद् अलोकः? पूर्वमलोकः, पश्चाल्लोकः?

रोह! लोकश्च अलोकश्च पूर्वमपि एतौ पश्चादपि एतौ। द्वावपि एतौ शाश्वतौ भावौ। अनानुपूर्वी एषा रोह!

पूर्वं भन्त! जीवाः पश्चाद् अजीवाः? पूर्वमजीवाः पश्चाज्जीवाः? यथैव लोकश्च अलोकश्च तथैव जीवाश्च अजीवाश्च। एवं भव-

अजीवा य, एव भवसिद्धिया य अभवसिद्धिया य सिद्धो असिद्धा सिद्धा असिद्धा ।

पुव्वि भत ! अडए, पच्छा कुक्कुडा ?, पुव्वि कुक्कुडा पच्छा अडए ?

रोहा ! से ण अडए कओ ? भयव ! कुक्कुडिओ । सा ण कुक्कुडी कओ? भते ! अडयाओ । एवामेव रोहा! से य अडए सा य कुक्कुडी पुव्वि पेते पच्छा पेत । दुवेते सासया भावा, अणाणपुव्वी एसा रोहा !

पुव्वि भत! लोयते पच्छा अलोयते?, पुव्वि अलोयते पच्छा लोयते ? रोहा ! लोयते अलोयते य जाव अणाणुपुव्वी एसा रोहा !

सिद्धिकाश्च, अभवसिद्धिकाश्च सिद्धि असिद्धि सिद्धा, असिद्धा पूर्व भन्त ! अडक पश्चात् कुक्कुटा पूर्वं कुक्कुटी पश्चाद् अंडकम? रोह ! तद् अडक कुत ? भगवन् ! कुक्कुटीत सा कुक्कुटी कुत ? भदन्त ! अडकत । एवमेव रोह ! तच्च अण्डक सा च कुक्कुटी पूर्व मपि एत पश्चादपि एत द्वावपि तौ शाश्वतौ भावौ अनानुपूर्वी एषा रोह ! पूर्व भन्त ! लोकान्त ? पश्चादलोकान्त ? पूर्वमलोकान्त पश्चाल्लोकान्तम् ? रोह ! लोकान्तश्चालोकान्त च यावद अनानुपूर्वी एषा रोह ! पूर्व भन्त ! लोकान्त, पश्चात् सप्तमअवकाशान्तर ? पच्छा रोह ! लोकान्त च सप्तमअवकाशान्तर पूर्वमपि द्वावपि एतौ यावदनानुपूर्वी एषा रोह ! एव लोकान्त च सप्तमश्च तनुवात एव घनवात घना धि सप्तमा पृथ्वी एव लोकान्तमेकैकेन संयोजयितव्य

पुव्वि भंते ! लोयंते, पच्छा सत्तमे उवासंतरे ? पुच्छा । रोहा ! लोयन्ते य सत्तमे उवासंतरे पुव्वि पि दोवि एते जाव अणाणुपुव्वी एसा रोहा ! एवं लोयंते य, सत्तमे य, तणुवाए एवं घणवाए घणोदही सत्तमा पुढवी, एवं लोयंते एक्केक्केणं संजोयव्वे इमेहिं ठाणेहिं तंजहा—

ओवासवायघणउदही,पुढवी दीवा य सागरा वासा ।
नेरइयाई अत्थिय समया कम्माइं लेस्साओ ॥१॥
दिट्ठी दंसण णाणा सन्न सरीरा य जोग उवओग ।
दव्व–पएसा पज्जव अद्धा किं पुव्विं लोयंते ॥२॥

मांभ स्थान तद्यथा–अवकाश–वात–घनो–दधि–पृथ्वी–द्वीपाश्च सागरा वर्षाणि नैरयिकादि अस्तिकाय समया परमाणु कर्म्मा, ॥१॥ दृष्टय दर्शनानि ज्ञानानि, संज्ञा, शरीराणि च योगा, उपयोगो द्रव्यप्रदेशा पर्यवा, अद्धा किं पूर्वं लोकान्तम ॥ ॥ पूर्व भदन्त ! लोकान्तं, पश्चात्सर्वाद्धा । यथा लोकान्तेन संयोजितानि सर्वाणि स्थानानि, एतानि एवमलोकान्तेनापि संयोजयितव्यानि सर्वाणि । पूर्व भदन्त ! सप्तम मवकाशान्तर पश्चात्सप्तम तनुवात एवं सप्तममवकाशान्तर सर्वे समं संयोजयितव्य यावत् सर्वाद्धया । पूर्वं भदन्त ! सप्तम तनु वात पश्चात् सप्तमो घनवात ? एतदपि तथव नतव्य यावत् सर्वाद्धा । एवमुपरितनमेकैक संयोजयता यद् यद् अधस्तन तत्तद् छर्दयिता नतव्य यावद् अतीतानागताद्धा पश्चात्सर्वाद्धा यावद् अनानुपूर्वी एषा रोह ! तदेव भदन्त ! तदेव भदन्त ! इति यावद् विहरति ।

पुव्वि भंते ! नायते पच्छा सव्वद्धा ? जहा लोय
तेण सजोइया सव्व ठाणा एन एव अलोयतेण वि सजो-
एव्या सव्वे ।

पुव्वि भंते ! सत्तमे उवासतरे, पच्छा सत्तम
तणुवाए? एव सत्तम उवासतर सव्वेहिं सम सजोएयव्व
जाव सव्वद्धाए ।

पुव्वि भंते ! सत्तमे तणवाए, पच्छा सत्तमे घणवाए?
एय पि तहेव नेयव्व जाव सव्वद्धा, एव उवरिल्ल क्वेक्क
सजोयतेण जा-जो हिट्ठिल्लो त-त छड्डतेण नयव्व जाव
अतीय–अणागयद्धा पच्छा सव्वद्धा जाव अणाणुपुव्वो
एसा रोहा ! सेव भंते ! सेव भंते ! त्ति जाव विहरइ ।

(भगवता सूत्र शतक १ उद्देशक ६)

सस्कृत–व्याख्या

पगइभद्दए त्ति' स्वभावत एव परोपकारकरणशील पगइ-
मउए त्ति' स्वभावत एव भावमार्दवि अतएव पगइ विणीए' त्ति
तथा पगइ उवसत' त्ति क्रोधाद्युदयाभावात पगइ-पयणु-कोहमाण-
मायालाभे सत्यपि कपायोदये तत्कार्याभावात् प्रतनुक्रोधादि भाव
मिउमद्दवसपन्ने' त्ति मद्दू यत्मार्दव—प्रत्ययमद्दवतिजयस्तस
पन्न प्राप्तो गुरूपदेशात् य स तथा, अल्लीणे त्ति गुरुमसाश्रित
सलीनो वा 'भद्दए त्ति' अनुपतापको गुरुशिक्षागुणात् विणीए त्ति,
गुरुसेवागुणात् 'भवसिद्धिया य त्ति भविष्यतीति भव भवा सिद्धि—
निव तिर्येषावन भवसिद्धिका भव्या इत्यय । सत्तमे उवासतरे' त्ति

कुशल-प्रविशा प्रपारंगतात्मर्षि । सूत्र—सब्दगादेवे ' तत्र
प्रासादां निर्गन्थ अतानारि चाय ति अनुभाष, पापाना
'मण उम्हि' ति प्रमोदपद मत पुरवा ति भरत वनिकरा
मायहप्रेवा मल पामदा-अध्याना प्रकटेषा एव मागारा मवमान्द
यातं ति बगानि भानारानि नाव उपाइ ति बहुलिनि
दवगा प्रतिपात नि पविरयापा पारगमय ति भार द्विम न
[illegible] अन्या यद् दृष्ट्वा—स्थितात्मप्रदानवन्निग, दत्तानि
वस्त्राणि, आनानि पश्च तत्रायनतर शरीराणि यव यागात्मय,
तत्यौरे भो द्रस्थानि पट प्रत्या मन पा, परया प्रमत्ता एव मद्र
नि पनीपदा मनागताद्रा गयाद्रा भनि नि गुप्ति मायानि नि
मय गुणानिमानिन्ति तदव पविषन—गुणानिमान दन्यनाह—
'पुच्छि भत ! मायार पच्छा सम्पद्ध नि पतानि गुणानि गुणधा
मान्यान्यरासन विधिन—बाह्याध्यात्मिक- वस्तु—प्रसाभिधानवीति
ईश्वरानि-कृत्य निरासेन वानानिन्यानिपातानीति ॥

हिन्दी—भावार्थ

उस काल उस समय श्रमण भगवान महावीर के शिष्य रोह नामक अनगार थे जो कि प्रकृति-स्वभाव से भद्र कोमल विनीत और उपशान्त थे। क्रोध मान माया, लोभ को उन्होंने कमजोर बना दिया था, वे मृदुता के भण्डार थे गुप्तेन्द्रिय थे सरलता और विनम्रता के निधि थे वे भगवान महावीर के सन्निकट ऊर्ध्व जानु को झुकाए हुए खड़े होकर तथा ध्यान रूप कोष्ठक को प्राप्त कर के संयम और तप के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विहरण कर रहे थे। एक बार उन्हें लोक अलोक आदि के सम्बन्ध में जिज्ञासा उत्पन्न हुई तदनन्तर वे भगवान महावीर की सेवा में

और भगवान को वन्दना नमस्कार करने के अनन्तर निवेदन करने लगे—

भगवन ! लोक पहले है अलोक पीछे है? या अलोक पहले है लोक पीछे है ?

भगवान—राहु ! लोक और अलोक पहले भी हैं और पीछे भी अर्थात ये दोनों पदार्थ शाश्वत हैं नित्य हैं। इन में कोई पहले हो और कोई पीछे ऐसी बात नहीं है।

रोह—भगवन ! जीव पहले है कि अजीव पहले है ?

भगवान— रोह ! इन लोक और अलोक के समान समझ लेना चाहिए।

इसी प्रकार भव्य अभव्य सिद्धि (मुक्ति) असिद्धि (संसार), सिद्ध (मुक्त), असिद्ध (संसारी) के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिए।

राहु—भगवन् ! अण्डा पहले है या मुर्गी ? मुर्गी पहले है या अण्डा ?

भगवान—राहु ! अण्डा कहां से उत्पन्न होता है ?

राहु—भगवन् ! मुर्गी से।

भगवान—राहु ! मुर्गी कहां से उत्पन्न होती है ?

रोह—भगवन् ! अण्डे से।

भगवान—राहु ! जैसे अण्डा और मुर्गी इन दोनों में एक पहले है एक पीछे है ऐसा नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि ये दोनों ही शाश्वत हैं नित्य हैं। वैसे ही लोक और अलोक आदि भी ऐसे ही हैं शाश्वत हैं।

राहु—भगवन् ! लोकान्त पहले है अलोकान्त पीछे है ? या अलोकान्त पहले है लोकान्त पीछे है ?

भगवान—राहु ! लोकान्त और अलोकान्त इन दोनों में एक पहले है दूसरा पीछे है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि ये दोनों शाश्वत हैं नित्य हैं।

राहु—भगवन् ! लोकान्त पहले है, *सप्तम अवकाशान्तर पीछे है? या सप्तम अवकाशान्तर पहले है और लोकान्त पीछे है ?

भगवान—रोह ! लोकान्त और सप्तम अवकाशान्तर इन में कोई पहले नहीं है और कोई पीछे नहीं है। दोनों ही शाश्वत हैं, नित्य हैं।

इसी प्रकार लोकान्त सप्तम तनुवात, सप्तम घनवात सप्तम घनोदधि और सप्तम नरक के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिए।

इसी प्रकार लोकान्त के साथ आकाश वात (तनुवात घनवात) घनोदधि पृथ्विएं (सात नरक) द्वीप, सागर वर्ष (भरत आदि क्षेत्र) नरयिक आदि २४ दण्डक अस्तिकाय (धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय) समय (सब से सूक्ष्म काल) कर्म (ज्ञानावरणीय आदि अष्ठविध कर्म) छ लेश्याएं (कृष्ण नील आदि) तीन दृष्टियां (सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि मिश्र-

---

*अवकाशान्तर आकाश को कहते हैं। लोकान्त और सप्तम नरक के मध्य में स्थित आकाश को सप्तम अवकाशान्तर कहा जाता है। प्रथम नरक का आकाश —प्रथम आकाश—' और दूसरी नरक का आकाश—द्वितीय, इसी क्रम से आगे—तीसरी का तीसरा चौथी का चतुर्थ पांचवी का पंचम छठी का षष्ठ और सातवीं नरक का आकाश सप्तम आकाश कहा जाता है।

दृष्टि) चार दर्शन (चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन केवल दर्शन) पाच ज्ञान, (मति श्रुत आदि) चार संज्ञाए (आहार, भय मथुन परिग्रह ये चार संज्ञाए) पाच शरीर (औदारिक वैक्रिय आहारक तैजस, कार्मण), तीन योग (मन-योग वचन योग काय-योग), दो उपयोग (दर्शनोपयोग, ज्ञानोपयोग), द्रव्यप्रदेश (द्रव्य के खण्ड) पर्याय (अवस्थाए), और अद्धा (काल) इन का जोड लेना चाहिए। अर्थात् ये सभी शाश्वत हैं नित्य हैं इन मे कोई पहले नही हैं, कोई पीछे नही है।

रोह–भगवन्! लोकान्त पहले है, सर्वाद्धा (भूत वर्तमान, भविष्य तीनो काल सम्पूर्ण काल) पीछे हैं?

भगवान–रोह! दोनो शाश्वत है नित्य है इन मे कोई पहले हो कोई पीछे ऐसी बात नही है।

जिस प्रकार लोकान्त के साथ अवकाशान्तर आदि को जोडकर प्रश्नोत्तर किए गए है, उसी प्रकार अलोकान्त के साथ अवकाशान्तर आदि को जोड लेना चाहिए प्रश्नोत्तर बना लेने चाहिए।

रोह–भगवन्! सप्तम आकाश पीछे है, अथवा सप्तम तनुवात?

भगवान–रोह! दोनो शाश्वत है नित्य हैं कोई पहले पीछे नही है?

इसी प्रकार सप्तम आकाश के साथ घनवात घनोदधि आदि से लेकर सर्वाद्धा तक इन सभी का जोड लेना चाहिए।

रोह–भगवन्! सप्तम तनुवात पीछे है सप्तम घनवात पीछे नही है।

भगवान–रोह ! दोनो शाश्वत हैं नित्य है इन मे कोई पहले–पीछे नहा है।

इसी प्रकार सप्तम तनुवात के साथ घनोदधि पृथ्वी आदि मे लेकर सर्वाद्धा तक, इन सब का संयोजन कर लेना चाहिए।

वर्णनक्रम मे सब मे पहले लोकान्त को रखा है फिर अलोकान्त, पुन सप्तम अवकाश को इसी प्रकार उस के अनन्तर तनुवात घनवात घनोदधि आदि हैं और अन्त मे सर्वाद्धा है। सर्वत्र प्रश्नोत्तरो मे ऊपर के बोल के साथ क्रमश नीचे के बोलो को जोडा गया है। जैसे लोकान्त को अवकाशान्तर आदि मे लेकर सर्वाद्धा तक, इन सभी के साथ जोडा गया है तथा अवकाशान्तर को तनुवात आदि से लेकर सर्वाद्धा तक के साथ जोडा गया। इसी प्रकार ऊपर के बोल के साथ नीचे के सब बोलो को क्रमश जोड देना चाहिए इसी क्रम से ऊपर के बोलो को छोडकर नीचे के बोलो के साथ शेष सभी बोलो का संयोजन करते चले जाना चाहिए। अन्त मे प्रश्नावली अद्धा तक चली जाती है।

मूल पाठ

* जे वि य ते खंदया ! जाव किं अणंते सिद्धे ? त चेव जाव । दव्वओ ण एगे सिद्धे सअन्ते, खेत्तओ ण सिद्धे

---

* येऽपि च ते स्कन्दक ! यावत् किमनन्त सिद्ध ? तच्चैव यावत् द्रव्यत —एक सिद्ध सान्त क्षेत्रत —सिद्धो असख्येयप्रदेशिक असख्येयप्रदेशावगाढ अस्ति पुन तस्यान्त । कालत —सिद्ध सादिरपर्यवसित नास्ति पुन तस्यान्त । भावत —सिद्धा अनन्ता

असखेज्जपएमिए असखेज्जपदेसोगाढे, अत्थि पुण से अन्त, कालओ ण सिद्धे सादीए अपज्जवसिए नत्थि पुण से अन्ते भावओ ण सिद्ध अणन्ता णाणपज्जवा, अणन्ता दसणपज्जवा जाव अणन्ता अगुरुलहुयपज्जवा नत्थि पुण से अन्ते, सेत्त दव्वओ सिद्धे सअन्ते, खेत्तओ सिद्धे सअन्ते, कालओ सिद्धे अणन्ते, भावओ सिद्धे अणन्ते ।

—भगवतीसूत्र शतक २, उद्देशक १

हिन्दी–भावार्थ

हे स्कन्दक ! सिद्ध अनन्त है परन्तु द्रव्य से एक सिद्ध सान्त है क्षेत्र से एक सिद्ध असख्यात—प्रदेशिक है, और असख्यातप्रदेशावगाढ है काल से एक सिद्ध सादि है, अनन्त है उसका अन्त नही होता है, भाव से एक सिद्ध की अनन्त ज्ञानपर्याय अनन्त दर्शन—पर्याय यावत अनन्त अगुरुलघुपर्याय है इन का कभी अन्त नही होता है।

साराश यह है कि द्रव्य और क्षेत्र से एक सिद्ध सान्त है किन्तु काल और भाव से एक सिद्ध अनन्त है।

मूल पाठ

†एगत्तेण साइया, अपज्जवसिया वि य ।

ज्ञानपर्यवा अनन्ता दर्शनपर्यवा यावत् अनन्ता अगुरुलघुपर्यवा नास्ति पुन तस्यान्त । समाप्त द्रव्यत —सिद्ध सान्त क्षेत्रत —सिद्ध सान्त कालत —सिद्धोऽनन्त भावत —सिद्धोऽनन्त ।

† एकत्वेन सादिका अपर्यवसिता अपि च ।
पृथक्त्वेन अनादिका अपर्यवसिता अपि च ॥

पुहुत्तेण अणाइया, अपज्जवसिया वि य ॥

—उत्तराध्ययन सूत्र अ० ३६/६६

संस्कृत–व्याख्या

एकत्वेनासहायत्वेन त सादिका अपर्यवसिता अपि च यत्र हि काले त
सिध्यन्ति स तथापि ननु कदाचित मुक्त भवन्ति अतो न पर्यवसा
नमिति। पृथक्त्वेन बहुत्वेन सामस्त्यापेक्षेन। यावत् अनादिका अपर्य
वसिता अपि च नहि कदाचित् ते नाभूवन न भविष्यन्ति चेति।

हिन्दी–भावार्थ

एक सिद्ध की अपेक्षा सिद्ध सादि अनन्त हैं और बहुत्व की अपेक्षा सिद्ध अनादि अनन्त हैं।

❊ परमात्मा एक है ❊

मूल पाठ

* एगे सिद्धे।

—स्थानांगसूत्र स्थान १ सू० ४६

संस्कृत–व्याख्या

'एगे सिद्धे' सिध्यति स्म कृतकृत्यो भवेन मेघतिस्म या समगच्छदपुनरावृत्त्या लोकाग्रमिति सिद्ध। सित वा बद्धं वा कर्म ध्मातं—दग्धं यस्य स निरुक्तात्—सिद्धः, कर्मप्रपञ्चनिर्मुक्त, स चैको द्रव्यार्थतया पर्यायार्थतस्त्वनन्तपर्याय इति अथवा सिद्धानामनन्तत्वेपि तत्सामान्यैकत्व अथवा कर्मसिद्धिल्पविद्यामन्त्र-योगागमार्थयात्राबुद्धितप—कर्मक्षयभेदेनानेकत्वेप्यस्यैकत्व सिद्धशब्दाभिधेयत्वसाम्यादिति।

---

* एक सिद्ध।

हिंदी-भावार्थ

सत्या की अपेक्षा से सिद्ध अनन्त होने पर भी सिद्ध जीवों की ज्ञान दर्शन आदि गुणसम्पदा समान होने के कारण 'सिद्ध एक है' ऐसा कहा जाता है।

मूल पाठ

णत्थि सिद्धी असिद्धी वा, णेव सन्नं निवेसए
अत्थि सिद्धी असिद्धी वा, एवं सन्नं निवेसए ॥१॥
णत्थि सिद्धी नियं ठाणं, णेव सन्नं निवेसए।
अत्थि सिद्धी नियं ठाणं, एवं सन्नं निवेसए ॥२॥

—सूत्रकृताग सूत्र श्रु० २, अ० ५ गा० २८ २६

संस्कृत-व्याख्या

सिद्धि अशेषकर्मच्युतिलक्षणा तद्विपर्ययस्ता चासिद्धिर्नास्तीत्येवं नो सज्ञा निवेशयेत् अपितु अस्ति—ससार लक्षणायाश्चातुर्विध्येनानन्तरमेव प्रसाधिताया अविगानेनास्तित्वं प्रसिद्ध तद्विपर्ययेण सिद्धरप्यस्तित्वम-निवारितमित्यतो अस्ति सिद्धिरसिद्धिर्वेत्येव सज्ञा निवेशयेदिति स्थितम्, इदमुक्तं भवति—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकस्य मोक्ष मार्गस्य सद्भावा त्तस्य चास्य च पीडोपशमादिनाऽभ्यासेन दर्शनादेन कस्यचिदात्यन्तिक-कर्मन्हानि सिद्धरस्ति सिद्धिरिति तथा चोक्तम् 'दोषाकरणयोर्हानि

---

* नास्ति सिद्धिरसिद्धिर्वा, नैव सज्ञा निवेशयेत्।
अस्ति सिद्धिरसिद्धिर्वा एवं सज्ञा निवेशयेत् ॥
नास्ति सिद्धि निज स्थानं नैव सज्ञा निवेशयेत्।
अस्ति सिद्धि निज स्थानं एवं सज्ञा निवेशयेत् ॥

नि उवाऽप्यति ।यतो । कश्चिद् यथा स्वप्नभ्यो, बहिर तम-
मनय ॥१॥ इत्यादि एवं सवपमद्भावादि मनश्चानुमाना मस्य
तत्र हि--प्रत्यक्षमानाधा प्रणाधा व्याहन्यादि (ता) नाम्न सम्कारणा
त तिर--बद्धया प्रमानिबाधा दप्न तत्र सम्यग्विम्प्रतातिनयप्राप्त
मवप्त इत्यादि नमशानुनाम् न भतस्माद्धीय नवया-
ता रमानमुन्कमयन्तो गनामियामिनिसान्भवेत् तथा--

स्थानस्थानान्तर यामि था नामाप्लुत्य गच्छति ।
न योजनममी गन्त पाक्लाऽप्यास पानगति ॥१॥

इति, स्प्यानस्मार्तीतिसयारसाम्यात् तथाहि साप्यमान
जल प्रनिमश धाय गच्छेत् प्रना तु विबद्धते यदि वा प्लोपोप
स्पर्शज्ञानमभि व मया प्लवनक्रियेऽपि पूर्वमर्यादाया मनति
क्रमाद्योजनाप्लवनाभाव तत्परित्याग चातरान्तर वद्धया
प्रज्ञाप्रकर्षमनवद्याजनगतमपि गच्छन्तियनो दृष्टा तन्मान्तिकयो
रसाम्यान्नन्नानन्तुनीयमिति स्थितम् प्रणावद्ध न शाधकप्रमाणाभावा
दस्ति सवज्ञत्व प्राप्तिरिति । यदि वा मज्जनभतसमुद्गदृष्टान्तेन
जीवाकुल वाज्जगतो हिंसाया दुर्निवारत्वात् सिद्धयभाव तथाचोक्तम्--

जले जीवा स्थले जीवा आकाशे जीवमालिनि ।
जीवमालाकुले लोके कथ भिक्षुरहिंसक ? ॥२॥

इत्यादि तन्न सवस्यव हिंसकत्वात् सिद्धयभाव इति तदनभ्युक्त
तथाहि--मनोवाक्कायस्य पिहिताश्रवद्वारस्य पञ्चसमिति समितस्य
त्रि गुप्तिगुप्तस्य सवथा निरवद्यानुष्ठायिनो द्विचत्वारिंशद्दोषरहितभिक्षा
भुज ईर्यासमितस्य कथंचिद् द्रव्यत प्राणिव्यपरोपणेऽपि तत्कृत
बन्धाभाव सवथा तस्यानवद्यत्वात् तथा चोक्तम्--'उच्चालियम्मि
पाए' इत्यादि अतीव तदेव कमबन्धाभावान्मिद्ध मुक्तेनो-
ऽप्याहृत, सामग्र्यभावादसिद्धिसद्भावोऽपीति ॥

सिद्धानां स्थाननिरूपणायाह— णत्थि सिद्धि इत्यादि सिद्ध— सकलकर्मक्षयलक्षणाया निजं स्थानम्—ईषत्प्राग्भारास्यं व्यवहारतो निश्चयतस्तु तदुपरियोजनक्रोशषड्भाग तत्प्रतिपादकप्रमाणाभावात् न नास्तीत्येव सज्ञा ना निवेशयेत यतो बाधकप्रमाणाभावात् साधकस्य चागमस्य सद्भावात्सत्ता दुर्निवारेति। अपिच—अपगतनिखिलकर्मणां सिद्धानां केनचित् विनिश्चितं स्थानं भाव्यं तच्चतल्लोकाग्रज्ज्वालाकस्य लोकस्याग्रभागं द्रष्टव्यं न च वक्तव्यं यदनुमानात् सर्वव्यापिनः सिद्धा इति यतो लोकालोकव्याप्याकाश न चाजीवद्रव्यस्य सभव तस्याकाशमात्रत्वात् लोकमात्र व्यापित्वमपि नास्ति विकल्पानुपपत्तेः तथाहि सिद्धावस्थाया तथा प्रागेव समस्यपगतमुत प्रागपि ? न तावत् सिद्धावस्थाया तत् व्यापित्वभवन निमित्ताभावात् नापि प्रागवस्थायां तत् भावे सर्वससारिणा प्रतिनियतसुख-दुःखानुभवो न स्यात् न च शरीराद्बहिरवस्थितमवस्थानमस्ति, तस्मात्रिव बनस्य प्रमाणस्याभावात्—अत सर्वव्यापित्व विचायमाण न कथचिन्न घटत तस्मात् च लोकाग्रमेव सिद्धानां स्थानं तत्रापि च कर्मविमुक्तस्योर्ध्व गति रिति कृत्वा भवति तथा चोक्तम्—

लाउ एरंडफले अग्गी धूमे य उसु धणु विमुक्के।
गई पुव्वपओगेण एव सिद्धाण वि गईओ ॥१॥

तस्मादस्ति सिद्धिस्तस्याश्च निजं स्थानमित्येव सज्ञा निवेशयेदिति ॥२६॥

हिन्दी—भावार्थ

सिद्धि (मुक्ति) नहीं है और असिद्धि (ससार) नहीं है ऐसी धारणा नहीं रखनी चाहिए प्रत्युत सिद्धि और असिद्धि दोनों हैं इस प्रकार की भावना रखनी चाहिए।

जीव का निज-स्थान मुक्ति नहीं है ऐसी धारणा भी नहीं रखनी चाहिए किन्तु यही समझना चाहिए कि जीव का

निज स्थान मुक्ति ही है।

मूल पाठ

* एगे भवं?, दुवे भवं?, अक्खए भवं?, अव्वए भवं?, अवट्ठिए भवं?, अणेगभूय भाव-भविए भवं? सोमिला! एगे वि अहं जाव अणेगभूयभावभविए वि अहं। से केणट्ठेणं भन्ते! एवं वुच्चइ जाव भविए वि अहं? सोमिला! दव्वट्ठयाए एगे अहं, नाणदंसणट्ठयाए दुविहे अहं, पएसट्ठयाए अक्खए वि अहं, अव्वए वि अहं, अवट्ठिए वि अहं, उवओगट्ठयाए अणेगभूय भाव-भविए वि अहं, से तेणट्ठेणं जाव भविए वि अहं।

—भगवतीसूत्र शतक १८, उद्देशक १०

संस्कृत-व्याख्या

एगे भवं मित्यादि एको भवानित्येकत्वाभ्युपगमे भगवतात्मन वने श्रोत्रादि विज्ञानानामवयवानां च अनेकत्वोपलब्धित एकत्वं

---

* एको भवान्? द्वौ भवान्? अक्षयो भवान्? अव्ययो भवान्? अवस्थितो भवान्? अनेक भूत भाव-भविको भवान्? सोमिल! एकोऽप्यहं यावत् अनेक—भूत—भाव भविकोऽप्यहम्। तत्केनार्थेन भन्त! एवं उच्यते यावद् भविकोऽप्यहम्? सोमिल! द्रव्यार्थतया एकोऽहम् ज्ञानदर्शनार्थतया द्विविधोऽहम् प्रदेशार्थतया अक्षयोऽप्यहम् अव्ययोऽप्यहम् अवस्थितोऽप्यहम् उपयोगार्थतया अनेकभूतभावभविकोऽप्यहम्, तत्तेनार्थेन यावद् भविकोऽप्यहम्॥

दूषयिष्यामानि बद्धया पयनुयाग सोमिलभट्टेन कृत, द्वौ भवानिति न द्वित्वाभ्युपगम इमियेन्यविनिष्टस्याथस्य द्वित्वविरोधान् त्वि दूषयिष्यामीति बुद्धया पयनुयोगो विहित, अक्खए भव' मित्यादिना त पञ्चयेण नित्यो भव । पयनुयुक्त अणग भूय-भावभविए भव' ति अनक भवा – अतीता भावा सत्तापरिणामा भव्याश्च भाविनो यस्य स तदा अनेक चातीन भविष्य सत्ताप्रम्नतानित्यतापक्ष पयनुयुक्त एकतरपरिग्र तस्यव दूषणायेति नभ च भगवता स्याद्वा ्स्य निखिल दोषगोचरगति धा त्मवलम्ब्योत्तरमदायि— एग वि अहं' मित्यादि कथमित्येतत् ? इत्यत आह-दव्वट्ठयाए एगोऽहं ति जीवद्रव्यस्यैकत्वे का ? न तु प्रदेशायतया तथाहि अनकत्वाममत्यवयवानामनकत्वा पादेभ्या न बाधक तथा कश्चित्स्वभावमाश्रित्यैकत्वसस्यांविनिष्टस्यापि पदार्थस्य स्वभावा तरद्वयापक्षया द्वित्वमपि न विरुद्धमित्यत उक्त— नाणदसणट्ठयाए दुवे वि अहं ति न चकस्य स्वभावभेदो न दृश्यते एको हि देवन्तादि पुरुष एकत्व तत्तदपक्षया पितृत्व-पुत्रत्व-भ्रातृत्वा दाननकान स्वभावान् लभत इति तथा प्रदेशाथतयाऽक्षयप्रदेशतामाश्रि या ोऽप्यहं सर्वथा प्रदेशानां क्षयाभावात् तथाऽव्ययोऽप्यहं कतिपयानामपि च व्ययाभावात् किमुक्त भवति ?—अवस्थितोऽप्यहं-नित्योऽप्यहम् असङ्ख्येयप्रदेशता हि न कदाचनापि व्यपति अतो नित्यताऽभ्युपगमेऽपि त दोष तथा उवओगट्ठयाए ति विविधविषयानुपयोगानाश्रि यानकभूतभाव-भविकाऽप्यहम् अतीतानां गतयोहि कालयोरनक विषय बोधानामा मन कथञ्चिदभिन्नानां भूत वान् भावि त्वन्नित्यपक्षोऽपि न दोषायेति ।

हिन्दी—भावार्थ

भगवतीसूत्र म सोमिल ब्राह्मण और भगवान महावीर के सवाद का वणन आता है । आग का वणन उसी सवाद का

र्ग भाग है—

सोमिल—भदन्त! आप एक हैं? दो हैं? अक्षय हैं? अव्यय हैं? अवस्थित (नित्य) हैं? भूतकालीन और भविष्यत्कालीन अनेक पर्यायों वाले हैं?

भगवान—सोमिल! मैं एक भी हूँ यावत् अनेक पर्यायों वाला भी हूँ।

सोमिल—भन्ते! किस अपेक्षा से आप ऐसा फरमाते हैं?

भगवान—सोमिल! द्रव्य की अपेक्षा से मैं एक हूँ, ज्ञान और दर्शन की अपेक्षा से मैं दो प्रकार का हूँ। आत्मप्रदेशों की अपेक्षा से अक्षय (क्षयरहित) हूँ, अव्यय (व्यय अर्थात् नाश से रहित) हूँ एवं अवस्थित नित्य भी हूँ। उपयोग की अपेक्षा से मैं अनेक भूत और भावी पर्यायों वाला हूँ।

इसलिए हे सोमिल! मैं एक भी हूँ यावत् अनेक पर्यायों वाला भी हूँ।

परिशिष्ट न० १

मूल पाठ

* से किं तं सव्वजीवाभिगम ?

सव्वजीवेसु णं इमाओ णव पडिवत्तीओ एवमाहिज्जंति । एगे एवमाहंसु—दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, जाव दसविहा सव्वजीवा पण्णत्ता । तत्थ जे ते एवमाहंसु दुविहा सव्व जीवा पण्णत्ता, ते एवमाहंसु तंजहा—सिद्धा य असिद्धा य इति ।

---

*अथ कोऽसौ सर्वजीवाभिगम ?

सर्वजीवेषु इमा नवप्रतिपत्तय एवमाख्यायन्ते—एक एवमाहु—द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता यावद् दशविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता । अत्र ये ते एवमाहु—त्रिविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता ते एवमाहु तद्यथा—सिद्धाश्च असिद्धाश्च इति ।

सिद्धा भदन्त ! सिद्ध इति कालतः कियच्चिरं भवति ?

गौतम ! सादिरपर्यवसित । असिद्धा भदन्त ! असिद्ध इति० ? गौतम ! असिद्धो द्विविध प्रज्ञप्त तद्यथा—अनादिको वा अपर्यवसित अनादिको वा सपर्यवसित । सिद्धस्य भदन्त ! कियत्कालमन्तर भवति ? गौतम ! सादिकस्य अपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरम् । असिद्धस्य भदन्त ! कियन्तर भवति ? गौतम ! अनादिकस्य अपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरम् । अनादिकस्य सपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरम् । एतेषां भदन्त ! सिद्धानामसिद्धानाञ्च कतर ? गौतम ! सर्वस्तोका सिद्धा असिद्धा अनन्तगुणा ।

सिद्धे ण भन्ते ! सिद्धे त्ति कालतो केवचिर होति ?,

गोयमा ! सातीअपज्जवसिए।

असिद्धेण भंते ! असिद्धत्ति ० ?

गोयमा ! असिद्धे दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—अणाइए वा अपज्जवसिए, अणातीए वा सपज्जवसिए।

सिद्धस्स ण भंते ! केवतिकाल अतर होति ?,

गोयमा ! सातियस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अतर।

असिद्धस्स ण भंते ! केवइय अतर होइ ?

गोयमा ! अणातियस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अतर, अणातियस्स सपज्जवसियस्स णत्थि अतर।

एएसिण भन्ते ! सिद्धाण असिद्धाण य कयरे २ ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा सिद्धा असिद्धा अणतगुणा।

—जीवाभिगम सूत्र २४४

संस्कृत-व्याख्या

स किं त' इत्यादि अथ का सौ सर्वजीवाभिगम ? सर्वजीवा संसारिमुक्त भेदा गुरुराह— सर्वजीवाभि ण मित्यादि सर्वजीवेषु सामान्येन एता अनन्तर वक्ष्यमाणा नव प्रतिपत्तय एवम अनन्तरमुपन्यस्यमानेन प्रकारेणाख्यायन्ते ता एवाह—एके एवमुक्तवन्तो—द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता। एके एवमुक्तवन्तस्त्रिविधा सर्व जीवा प्रज्ञप्ता एव यावदेके एवमुक्तवन्तो दशविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता।

तत्र ये ते एवमाहुस्तत्र ये ते एवमुक्तवन्तो द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्तास्ते एवमुक्तवन्तस्तद्यथा—सिद्धाश्चासिद्धा सित ... कर्म

धमा—सम्मीत्त यस्ते सिद्धा यपोऽराग्निवादिप्रम्पतिनित्यत्ति निग्धक्मेंधना मुक्ता द यद । असिद्धा सत्तारिण म श० ौ स्वगताःरभदमन्तानायो । सम्प्रति सिद्धस्य शायस्थितिमाह—सिद्ध ण, मित्यादि सिद्धा भन्त ! सिद्ध त्ति—सिद्धत्वेन कालत क्रियच्चिर भवति ? भगवानाह—गौतम ! सिद्ध सान्तिकोऽपयवसित तत्र सान्तिता समारविप्रमत्तिसमय सिद्धत्वभावात अपयवसितता सिद्धत्व च्यतेरसम्भवात । प्रसिद्धविषय प्रश्नसूत्र सुगम ।

भगवानाह—गौतम ! असिद्धा द्विविध प्रज्ञप्तस्तद्यथा—अनादिका पयवसित अनादिक सपयवसित । तत्र या न जातुचिदपि सत्स्यति अभव्य वात गावि समामप्रधभाव इा सो नाद्यपयवसित यस्तु सिद्धि गत गाऽनादिसपयवसित । साम्प्रतमन्तर चिचिन्तयिपुराह – सिद्धस्स ण भते ! इत्यादि प्रश्न-सूत्र सुगम भगवानाह—गौतम ! सिद्धस्य सादिकस्यापयवसितस्य नास्त्य तरम अत्र निमित्तकारणहेतुषु सर्वासा विभक्तीना प्रायो दर्शन मिति न्यायात् ततो षष्ठी तनोऽयमथ — यस्मात् सिद्ध सादिरपयवसितस्तस्मान्नास्त्यन्तरम् अपयवसितत्वा यागात् असिद्ध सूत्र असिद्धस्यानादिकस्यापयव सितस्य नास्त्यन्तरम्, अपयवसितत्वादेवासिद्धत्वाप्रच्युत अनादिक सपयवसितस्यापि ना स्त्यन्तर भवा5ऽसिद्धत्वायागात् साम्प्रतमल्पबहुत्वमाह — एग ऽसि ण मित्यादि प्रश्न सूत्र सुगम भगवानाह —गौतम ! सवस्तोका सिद्धा असिद्धा अनन्तगुणा निगोदजीवानामतिप्रभूतत्वात् ।

हिन्दी—भावार्थ

जीवाभिगम (जिस म केवल ससारी जीवो का वणन है) मे अनन्तर सर्वजीवाभिगम (जिस म ससारी और मुक्त, दोनो प्रकार के जीवो का वणन है) का स्थान है । अनगार गौतम ने भगवान महावीर से पूछा—भन्त ! सर्वजीवाभिगम म क्या

वर्णन है ?

भगवान बोले-गौतम! सब जीवों का वर्णन करने वाली नव प्रतिपत्तियां (अध्ययन) कही गई है। जैसे कि—

कई एक ऐसा कहते हैं कि सब जीव दो प्रकार के होते हैं यावत् दस प्रकार के होते हैं। जो यह कहते हैं कि जीव दो प्रकार के होते हैं उन की मान्यता इस प्रकार है—

१—सिद्ध, और २—असिद्ध

अनगार गौतम बोले—भदन्त! सिद्ध भगवान की सिद्धत्व रूप से कितनी स्थिति होती है ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम! सिद्ध भगवान की स्थिति एक सिद्ध की अपेक्षा से सादि अनन्त होती है।

अनगार गौतम बोले—भदन्त! असिद्ध जीवों (संसारी जीवों) की असिद्धत्व रूप से कितनी स्थिति होती है ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम! असिद्ध जीव दो प्रकार के कहे गये हैं जैसे कि—

१ अनादि-अनन्त, २ अनादि-सान्त

अनगार गौतम बोले—भदन्त! काल की अपेक्षा से सिद्ध भगवान का कितना अन्तर होता है ? अर्थात सिद्ध सिद्धत्व को छोड़कर पुन कब सिद्ध बनते हैं ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम! सादि अनन्त सिद्ध भगवान का कोई अन्तर नहीं होता है। अर्थात् सिद्ध भगवान सिद्धत्व से कभी रहित नहीं होते हैं।

अनगार गौतम बोले—भदन्त! काल की अपेक्षा से असिद्ध जीव का कितना अन्तर होता है ? अर्थात् असिद्ध जीव

दमाह—समीक्त यस्त मिद्धा पदान्रान्त्वान्व्याघनिवर्त्ति निश्चयम् में धना मुक्ता यत । असिद्धा ' ममारिण च श ो स्वगतानस्भन्मन जाता । सम्प्रति सिद्धस्य कायस्थितिमाह—सिद्ध ण मि याति गिना भ । ' सिद्ध इति सिद्धत्वेन कालत कियच्चिर भवति ? भगवानाह—गौतम ! सिद्ध सादिकोऽपर्यवसित तत्र सादिता ममारविप्रमुक्तिसमये सिद्ध वभावान अपर्यवसितता सिद्धत्व स्यान्तरमभावात् । असिद्धविषय प्रश्नसूत्र सुगम ।

भगवानाह—गौतम ! असिद्धा द्विविध प्रज्ञप्तास्तद्यथा—अनादि-काऽपर्यवसित अनादिक सपर्यवसित । तत्र यो न जातुचिदपि सत्स्यति अभव्य वा तथाविधसामग्र्यभावाद्वा सोऽनाद्यपर्यवसित यस्तु सिद्धि गत सोऽनादिसपर्यवसित । साम्प्रतमन्तर चिचिन्तयिषुराह - सिद्धस्स ण भत ! इत्यादि प्रश्नसूत्र सुगम भगवानाह—गौतम ! सिद्धस्य सादिकस्यापर्यवसितस्य नास्त्यन्तरम अत्र निमित्तकारणहेतुषु सर्वासा विभक्तीना प्रायो दर्शनम् इति न्यायात् इतो षष्ठी ततोऽयमर्थ — यस्मात्सिद्ध सादिरपर्यवसितस्तस्मान्नास्त्यन्तरम् अपर्यवसितत्वा भावात् असिद्ध सूत्र असिद्धस्यानादिकस्यापर्यव सितस्य नास्त्यन्तरम, अपर्यवसितत्वादेवासिद्धत्वाप्रच्युत अनादिकसपर्यवसितस्यापि ना-स्त्यन्तर भूयोऽसिद्धत्वायोगात् साम्प्रतमेतेषामल्प बहुत्वमाह— एए ऽसि ण भिर्याति प्रश्न सूत्र सुगम भगवानाह—गौतम ! सर्वस्तोका सिद्धा असिद्धा अनन्तगुणा निगोदजीवानामतिप्रभूतत्वात् ।

हिन्दी-भावार्थ

जीवाभिगम (जिस म केवल ससारी जीवो का वणन है) के अनन्तर सर्वजीवाभिगम (जिस म ससारी और मुक्त, दानो प्रकार के जीवो का वणन है) का स्थान है । अनगार गौतम ने भगवान महावीर से पूछा—भदन्त ! सर्वजीवाभिगम म क्या

मइदिए ण भंते ! कालतो केवच्चिरं होइ ?

गोयमा ! मइदिए दुविहे पण्णत्ते—अणातीए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए । अणिदिए सातीए वा अपज्जवसिए दोण्ह वि अंतरं नत्थि । सव्व-त्थोवा अणिंदिया, सइंदिया अणंतगुणा ।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा—सकाइया चेव अकाइया चेव एवं चेव एवं सजोगी चेव अजोगी चेव

अनिन्द्रिय सादिका वा अपर्यवसित । द्वयोरपि अन्तरं नास्ति । सर्वस्तो-का अनिन्द्रिया, सेन्द्रिया अनन्तगुणा ।

अथवा द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता तद्यथा—सकायिकाश्चैव, अकायिकाश्चैव । एवं चैव एवं सयोगिनश्चैव, अयोगिनश्चैव तथैव । एवं सलेश्याश्चैव अलेश्याश्चैव सशरीराश्चैव अशरीराश्चैव । संस्थानम् अन्तरम् अल्पबहुत्वम् यथा सेन्द्रियाणाम् ।

अथवा द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता । तद्यथा—सवेदकाश्चैव अवेदकाश्चैव ।

सवेदको भदन्त ! सवे० । गौतम ! सवेदकः त्रिविधः प्रज्ञप्तः । तद्यथा—अनादिकः अपर्यवसितः, अनादिकः सपर्यवसितः सादिकः सपर्यवसितः । तत्र य स सादिकः सपर्यवसितः सो जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम् उत्कर्षेण अनन्तं कालं यावत् अपार्द्ध पुद्गलपरावर्तं देशोनम् ।

अवेदको भदन्त ! अवेदक इति कालतः कियच्चिरं भवति ? गौतम ! अवेदकः द्विविधः प्रज्ञप्तः । तद्यथा—सादिको वा अपर्यवसितः सादिको वा सपर्यवसितः । तत्र य स सादिकः सपर्यवसितः स जघन्येन एकं समयम् उत्कर्षेण अन्तर्मुहूर्तम् ।

असिद्धत्व का छोड़ कर पुनः सिद्ध असिद्ध बनते हैं ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! अनादि अनन्त असिद्ध जीव का अन्तर नहीं होता है। अर्थात् असिद्ध जीव असिद्धत्व को छोड़ कर (सिद्धत्व को प्राप्त कर के) पुनः असिद्धत्व को कभी प्राप्त नहीं होते हैं। क्योंकि अनादि अनन्त होने के कारण वे असिद्धजीव असिद्धत्व का कभी परित्याग ही नहीं कर पाते हैं।

इसी प्रकार अनादि सान्त असिद्ध जीवों का भी अन्तर नहीं होता है। क्योंकि अनादि सान्त असिद्ध जीव असिद्धत्व का परित्याग करके अर्थात् सिद्धत्व को प्राप्त करके पुनः असिद्धत्व को प्राप्त नहीं होते हैं सिद्धत्व को छोड़ कर असिद्धत्व में नहीं आते हैं।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! इन सिद्ध और असिद्ध जीवों में कौन अल्प और कौन अधिक है ?

भगवान महावीर कहने लगे—गौतम ! सब से कम सिद्ध जीव हैं और सिद्ध जीवों से असिद्ध जीव अनन्त गुणा अधिक होते हैं।

मूल पाठ

*अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा—सइंदिया चेव अणिंदिया चेव।

---

* अथवा द्विविधा सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः। तद्यथा—सेन्द्रियाश्चैव अनिन्द्रियाश्चैव।

सेन्द्रियो भदन्त ! कालतः कियच्चिरं भवति ? गौतम ! सेन्द्रियो द्विविधः प्रज्ञप्तः अनादिको वा अपर्यवसितः अनादिको वा सपर्यवसितः।

सइंदिए ण भंते ! कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! सइंदिए दुविहे पण्णत्ते—अणाईए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए । अणिंदिए साईए वा अपज्जवसिए दोण्ह वि अंतरं नत्थि । सव्वत्थोवा अणिंदिया, सइंदिया अणंतगुणा ।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा—सकाइया चेव अकाइया चेव एवं चेव,एवं सजोगी चेव अजोगी चेव

अनिन्द्रिय सादिको वा अपर्यवसित । द्वयोरपि अन्तरं नास्ति । सर्वस्तोका अनिन्द्रिया , सेन्द्रिया अनन्तगुणा ।

अथवा द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता । तद्यथा—सकायिकाश्चैव, अकायिकाश्चैव । एवं चैव एवं सयोगिनश्चैव, अयोगिनश्चैव तथैव । एवं सलेश्याश्चैव अलेश्याश्चैव सशरीराश्चैव अशरीराश्चैव । संस्थानम् अन्तरम् अल्पबहुत्वम् यथा सेन्द्रियाणाम् ।

अथवा द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता । तद्यथा—सवेदकाश्चैव अवेदकाश्चैव ।

सवेदको भदन्त ! सवे । गौतम ! सवेदकः त्रिविध प्रज्ञप्त । तद्यथा—अनादिकः अपर्यवसित , अनादिकः सपर्यवसित , सादिकः सपर्यवसित । तत्र य स सादिकः सपर्यवसितः सो जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम् उत्कर्षेण अनन्त काल यावत् क्षेत्रत अपार्ध पुद्गलपरावर्त देशोनम् ।

अवेदको भदन्त ! अवेदक इति कालत कियच्चिर भवति ? गौतम ! अवेदको द्विविध प्रज्ञप्त । तद्यथा—सादिको वा अपर्यवसित सादिको वा सपर्यवसित । तत्र य स सादिक सपर्यवसित स जघन्येन समयम् उत्कर्षेण अन्तर्मुहूर्तम् ।

असिद्धत्व को छोड कर पुन कब असिद्ध बनते हैं ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! अनादि अनन्त असिद्ध जीव का अन्तर नहीं होता है। अर्थात् असिद्ध जीव असिद्धत्व को छोड कर (सिद्धत्व को प्राप्त कर के) पुन असिद्धत्व को कभी प्राप्त नहीं होते हैं। क्योंकि अनादि अनन्त होने के कारण वे असिद्धजीव असिद्धत्व का कभी परित्याग ही नहीं कर पाते हैं।

इसी प्रकार अनादि सान्त असिद्ध जीवों का भी अन्तर नहीं होता है। क्योंकि अनादि सान्त असिद्ध जीव असिद्धत्व का परित्याग कर अर्थात् सिद्धत्व को प्राप्त करके पुन असिद्धत्व को प्राप्त नहीं होते हैं सिद्धदशा को छोड कर असिद्धदशा में नहीं आते हैं।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! इन सिद्ध और असिद्ध जीवों में कौन अल्प और कौन अधिक है ?

भगवान महावीर कहने लगे—गौतम ! सब से कम सिद्ध जीव हैं और सिद्ध जीवों से असिद्ध जीव अनन्त गुणे अधिक होते हैं।

मूल पाठ

*अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा—सइंदिया चेव अणिंदिया चेव।

---

* अथवा द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता। तद्यथा—सेन्द्रियाश्चैव अनिन्द्रियाश्चैव।

सेन्द्रियो भदन्त ! कालत कियच्चिरं भवति ? गौतम ! सेन्द्रियो द्विविध प्रज्ञप्त अनादिको वा अपर्यवसित अनादिको वा सपर्यवसित।

सइंदिए णं भंते ! कालतो केवचिरं होइ ?

गोयमा ! सइंदिए दुविहे पण्णत्ते—अणादीए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए । अणिंदिए सातीए वा अपज्जवसिए दोण्ह वि अंतरं नत्थि । सव्व-त्थोवा अणिंदिया, सइंदिया अणंतगुणा ।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा—सकाइया चेव अकाइया चेव एवं चेव एवं सजोगी चेव अजोगी चेव

अनिन्द्रिय सादिका वा अपर्यवसित । द्वयोरपि अन्तरं नास्ति । सर्वस्तोका अनिन्द्रिया सेन्द्रिया अनन्तगुणा ।

अथवा द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता तद्यथा—सकायिकाश्चैव, अकायिकाश्चैव । एवं चैव एवं सयोगिनश्चैव, अयोगिनश्चैव तथैव । एवं सलेश्याश्चैव अलेश्याश्चैव सशरीराश्चैव अशरीराश्चैव । संस्थानम् अन्तरम् अल्पबहुत्वम् यथा सेन्द्रियाणाम् ।

अथवा द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता । तद्यथा—सवेदकाश्चैव अवेदकाश्चैव ।

सवेदका भदन्त ! सवे० । गौतम ! सवेदक त्रिविध प्रज्ञप्त । तद्यथा—अनादिक अपर्यवसित अनादिक सपर्यवसित, सादिक सपर्यवसित । तत्र य स सादिक सपर्यवसित सो जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम् उत्कर्षेण अनन्त काल यावत् क्षेत्रत अपार्ध पुद्गलपरिवर्त देशोनम् ।

अवेदको भदन्त ! अवेदक इति कालत कियच्चिर भवति ? गौतम ! अवेदका द्विविध प्रज्ञप्त । तद्यथा—सादिका वा अपर्यवसित सादिको वा सपर्यवसित । तत्र य स सादिक सपर्यवसित स [illegible] समयम उत्कर्षेण अन्तर्मुहूर्तम् ।

तत्थ । एत्थ सतोम्मा चेव, अजेम्मा चेव, गसगीग चेव, असगीरा चेव, मत्रिट्ठण अतर अप्पाबहुय जहा मइन्दियाण ।

अन्ना दविहा मव्वजावा पण्णत्ता, तजहा—सवेदगा चेव अवेदगा चेव ।

सवेदए ण भन्ते ! सवे० ? गोयमा ! सवेयए तिविहे पण्णत्ते, तजहा—अणादीए अपज्जवसिते, अणादीए सपज्जवसिए, साइए सपज्जवसिए । तत्थ ण जे से साइए सपज्जवसिए से जह० अतोमु० उक्को० अणत काल जाव खेत्तओ अवड्ढ पोग्गलपरियट्ट दसूण ।

अवेदए ण भन्ते ! अवेयए त्ति कालओ केवचिर होइ? गोयमा ! अवेद दुविहे पण्णत्त तजहा—सातीए

सवेदस्य भदन्त ! कियत्कालमन्तर भवति ? अनादिकस्य अपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरम् । अनादिकस्य सपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरम् । सादिकस्य सपर्यवसितस्य जघन्येन एक समयम उत्कर्षेण अन्तर्मुहूर्तम ।

अवेदकस्य भदन्त ! कियत्कालमन्तर भवति ? सादिकस्य अपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरम । सादिकस्य सपर्यवसितस्य जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम उत्कर्षेण अनन्त काल यावत् अपार्धं पुद्गलपरिवर्त देशोनम । अल्पबहुत्वम्—सवस्तोका अवेदका सवेदका अनन्तगुणा । एव सकषायिणश्चैव अकषायिणश्चैव । यथा सवेदकस्तथैव भणितव्य ।

अथवा द्विविधा सर्वजीवा । सलेश्याश्च अलेश्याश्च । यथा असिद्धा, सिद्धा । सवस्तोका अलेश्या, सलेश्या अनन्तगुणा ।

ना अपज्जवसिए, साइए वा सपज्जवसिए तत्थ ण जे स मादिए सपज्जवसिए स जहण्णेण एक्क समय उक्को० अतोमुहुत्त ।

सवेयगस्स ण भते ! केवतिकाल अतर होइ ?

अणादियस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अतर, अणादि यस्स सपज्जवसियस्स नत्थि अतर सादीयस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेण एक्क समय उक्कोसेण अतोमुहुत्त ।

अवेदगस्स ण भते ! केवतिय काल अतर होइ ?

सातीयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अतर, सातीयस्स सपज्जवसियस्स जह० अतोमु० उक्कोसेण अणत काल जाव अवड्ढ पोग्गलपरियट्ट देसूण । अप्पाबहुग–सव्व त्थोवा अवेयगा, सवेयगा अणतगुणा । एव सकसाई चेव अकसाई चेव २ जहा सवेया तहेव भाणियव्व ।

अहवा दुविहा सव्वजीवा–सलेसा य अलेसा य जहा असिद्धा सिद्धा, सव्वत्थोवा–अलेसा, सलेसा अणतगुणा ।

संस्कृत–व्याख्या

अथवा द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्तास्तद्यथा—सेन्द्रियाश्च अनिन्द्रियाश्च तत्र सेन्द्रिया –ससारिण अनिन्द्रिया –सिद्धा । उपाधिभेदान्नय उपयाय । एव सकायिकादिष्वपि भावनीय तत्र सेन्द्रियस्य कायस्थि तिरन्तर चासिद्धवक्तव्य अनिन्द्रियस्य सिद्धवत्

ण भंते ! स इंदिए त्ति कालतो केवचिरं होइ? गोयमा! सइंदिए
दुविहे पण्णत्ते तंजहा – अणाइए वा अपज्जवसिए अणाइए वा
सपज्जवसिए। अणिंदिए णं भंते ! अणिंदिए त्ति कालतो
केवचिरं होइ? गोयमा ! साइए अपज्जवसिए। सइंदियस्स
णं भंते ! केवतिकालं अंतरं होइ? गोयमा ! अणाइयस्स
अपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं अणाइयस्स सपज्जवसियस्स
नत्थि अंतरं। अणिंदियस्स णं भंते ! अंतरं कालतो
केवचिरं होइ? गोयमा ! साइयस्स अपज्जवसियस्स नत्थि
अंतरं इति अल्पबहुत्वमत्र पूर्ववद्भावनीयम्। एवं कायादिपदेषु तदन्तर्गत
बहुसूत्राणि सकायिकाकायिकविषयाणि सयोगायोगविषयाण्यपि भावनीय
तदेव यानि सूत्राणि—अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा
सकाइया चेव अकाइया चेव एवं सजोगी चेव अजोगी चेव,तहेव
एवं सलेस्सा चेव अलेस्सा चेव ससरीरा चेव असरीरा चेव संचिट्ठणं
अंतरं अप्पाबहुयं जहा सकाइयाणं। अथ प्रकारान्तरेण द्विविधमाह
अहवा इत्यादि अथवा द्विविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—सवेदकाश्च
अवेदकाश्च। तत्र सवेदकस्य कायस्थितिमाह सवेदए णं भंते ! इत्यादि
प्रश्नसूत्रं सुगमं भगवानाह—गौतम! सवेदकस्त्रिविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—अनादि
पर्यवसितः अनादिसपर्यवसितः सादिसपर्यवसितश्च तत्रानाद्यपर्यवसितो
ऽभव्यो भव्यो वा तथाविधसामग्र्यभावान्मुक्तिगमन तदुक्तम्—भव्वा
वि न सिज्झंति केइ इत्यादि अनादिसपर्यवसितो भव्यो मुक्तिगामी
पूर्वमप्रतिपन्नोपशमश्रेणिः सादिसपर्यवसितः पूर्वं प्रतिपन्नोपशमश्रेणिः
उपशमश्रेणिं प्रतिपन्नः वशात्समनन्तरकालानन्तरवेदमनुभूय श्रेणिसमाप्तौ
भवक्षयाद्वापान्तराले मरणतो वा प्रतिपतितो भूयोऽपि पुनः सवेदकत्वोपपत्तः,
तत्र यो सादिसपर्यवसितः जघन्यतो अन्तर्मुहूर्त्तं श्रेणिसमाप्तौ सवेदकत्वे
सति पुनरन्तर्मुहूर्त्तेन श्रेणिप्रतिपत्तावदवेदकत्वसम्भवात्, आह—किमेकस्मिन

इ मनि वा न्यमुपशमश्रेणिलाभो भवति ? अ्र्-प्युच्यते मायमनाद्गुवनि तथा च ह—पूतन्तीरावार — नवस्मिन् जन्मनि उपशमश्रेणि क्षप कश्रेणि च जायत उपशमश्रेणिद्वय तु भव येव नि गम एवमुपशमन-मध्येनान्तर्मुहूर्तमुपशमतोऽनन्त काल समय कालभवाभ्या निरूपयति-मनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्य एता कालतो मार्गणा क्षेत्रतोऽपार्द्धपुद्गल परावर्त्त देशोनम एतावत कालादूर्ध्व पूर्वप्रतिपन्नोपशमश्रेणेरवश्य मुक्तयासन्नतया श्रेणिप्रतिपत्तावश्यम्भावात् । अवेदएण भत ! इत्यादि प्रश्नसूत्र पाठसिद्ध भगवानाह—गौतम ! अवेदकस्त्रिविध प्रज्ञप्तस्तद्यथा सादिको वा पर्यवसित [समयानन्तर] क्षीणवेद सादिको वा सापर्यवसित —उपशान्तवेद तत्र यो सो सादिसपर्यवसितोऽवेदक स च जघन्येनैक समय उपशमश्रेणि—प्रतिपन्नस्य वेदोपशमसमयानन्तरमपि मरण पुन सवेदकत्वापत्ते उत्कर्षतोऽन्तर्मुहूर्त्त श्रेणिकाल तत ऊर्ध्व श्रेणौ प्रतिपतन नियमत सवेदकत्वभावात् । अवेद प्रतिविपादयिषु राह— सवेदगस्स ण भते ! इत्यादि प्रश्नसूत्र सुगम भगवानाह— गौतम ! अनादिकस्यापर्यवसितस्य सवेदकस्य नास्त्यन्तर अपर्यवसितत या सदा तद्भावापरित्यागात अनादिकस्य सपर्यवसितस्यापि नास्त्यन्तर अनादिसपर्यवसितो ह्यपान्तराल उपशमश्रेणिमप्रतिपद्य भाविक्षीणवेदो न च क्षीणवेदस्य पुन सवेदकत्व प्रतिपाताभावात् सादिकस्य सपर्य वसितस्य सवेदकस्य जघन्येनैक समयमन्तर, द्वितीयवारमुपशमश्रेणि प्रतिपन्नस्य वेदोपशमसमयानन्तर कस्यापि मरणसम्भवात् उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्त्त द्वितीय वारमुपशमश्रेणि प्रतिपन्नस्योपशान्तवेदस्य श्रेणिसमाप्तावश्य पुन सवेदकत्वाभावात् । अवेदकसूत्र सादिकस्यापर्यवसितस्यावेदकस्य नास्त्यन्तर क्षीणवेदस्य पुन सवेदकत्वाभावात् वेदानां निर्मूलकाषकषित त्वात् सादिकस्य सपर्यवसितस्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्त, उपशमश्रेणिसमाप्तौ सवेदकत्व सति पुनरन्तर्मुहूर्त्तेनोपशमश्रेणिलाभतोऽवेदकत्वोपपत्ते उत्कर्ष

भाजन न कान अन ना उ सर्पिण्यवसर्पिण्य नासत शक्नोऽपाद्धपुद्गल
परावर्त्त नगात गङ्कारमुत्कर्षणि प्रतिपद्य तथारदरा भूत्वा अजिसमाप्तौ
नवनवत्र सति पुनरेनावता कालेन थ अिप्रतिपत्तावबदस्य वोपपत्त ।
अष्टप्रकृमबन्ध—एगासि ण भंते । जीवा इत्यादि—पूर्ववत् । प्रका
रान्तरेण द्वैविध्यमाह – अहवा इत्यादि अथवा द्विविधा सर्वजीवा
प्रज्ञप्तास्तद्यथा—सकषायिकाश्च अकषायिकाश्च सह कषाया येषां यद्वा
ते सकषायाः त एव सकषायिकाः प्राकृतत्वात् स्वार्थे इकप्रत्यय
एवं न विद्यन्ते कषाया येषां ते अकषायाः २ एवाकषायिकाः । सम्प्रति
कायस्थितिमाह—सकसाईयस्स इत्यादि, सकषायिकस्य त्रिविधस्यापि
सकषायस्य कायस्थितिरन्तर च यथा सवेदकस्य, अकषायिकस्य द्विविध
स्यापि कायस्थितिरन्तरं च यथा अवेदकस्य तच्चैवम्—सकसाइए
ण भंते ! सकसाइय त्ति कालतो केवचिरं होइ ? गोयमा !
सकसाइए तिविहे पन्नत्ते तंजहा—अणाइए वा अपज्जवसिए
अणाइए वा सपज्जवसिए साइए वा सपज्जवसिए तत्थ जे से
साइए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं
कालं—अणंता ओसप्पिणिउस्सप्पिणीओ कालतो खेत्तओ
अवड्ढपोग्गलपरियट्टं देसूणं अकसाइए णं भंते ! अकसाइय त्ति
कालओ केवचिरं होइ ? गोयमा ! अकसाइए— दुविहे पण्णत्ते
तंजहा—साइए वा अपज्जवसिए साइए वा सपज्जवसिए तत्थ
णं जे साइए सपज्जवसिए से जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं
अंतोमुहुत्तं । सकसाइयस्स णं भंते ! अंतरं कालतो केवचिरं
होइ ? गोयमा ! अणाइयस्स अपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं,
अणाइयस्स सपज्जवसियस्स नत्थि अंतरं साइयस्स सपज्ज
वसियस्स जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं
अकसाइयस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ? साइयस्स

अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं साइयस्स सपज्जवसियस्स जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव अवड्ढ पोग्गलपरियट्टं देसूणं मिति अस्य व्याख्या पूर्ववत्। अल्पबहुत्वमाह- एएसि णं भंते ! जीवाणं सकसाइयाणं मित्यादि प्राग्वत्। प्रकारान्तरेण द्वैविध्यमाह।

हिन्दी-भावार्थ

अथवा सब जीव दो प्रकार के कहे गये हैं। जैसे कि सइन्द्रिय और अनिन्द्रिय।

अनगार गौतम बोले—भगवन्! सइन्द्रिय जीव काल से कब तक रहता है?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम! सइन्द्रिय जीव दो प्रकार के होते हैं—१ अनादि अनन्त और २ अनादि सान्त। किन्तु अनिन्द्रिय (सिद्ध) जीव सादि अनन्त होते हैं। दोनों प्रकार के जीवों में अन्तर नहीं होता है। सब से कम अनिन्द्रिय जीव होते हैं। इन की अपेक्षा सइन्द्रिय जीव अनन्त गुणा अधिक होते हैं।

अथवा सब जीव दो प्रकार के कहे गए हैं। जैसे कि सकायिक अर्थात् काय वाले अकायिक (काय से रहित सिद्ध)। इसी प्रकार सयोगी (मन वचन काया के व्यापार वाले) और अयोगी (सिद्ध), सलेश्य कृष्ण नील आदि लेश्याओं वाले, और अलेश्य लेश्याओं से रहित सिद्ध, सशरीर औदारिक आदि शरीर वाले) और अशरीर (शरीर रहित सिद्ध)।

सकायिक आदि सभी जीवों का संस्थान (पर्यवस्थिति) अन्तर और अल्पबहुत्व सइन्द्रिय जीवों के समान

चाहिए।

अथवा सवजीव दो प्रकार के कहे गए हैं । जसेकि सवदक (स्त्री आदि वद वाले) और अवेदक (वदरहित)।

अनगार गौतम बाले–भगवन ! सवदक जीव कितन प्रकार के हान हैं ?

भगवान महावीर न कहा—गौतम ! सवदक जीव तीन प्रकार के होते हैं। जसेकि—१–अनादि अनन्त २—अनादि-सान्त ३—सादि-सान्त । इन मे से जो सादि-सान्त जीव है, उन की अवस्थिति जघन्य अन्तमुहूत और उत्कृष्ट अनन्त काल तक है। यावत क्षत्र से *देशान अपाध पुद्गल परिवतन तक है।

अनगार गौतम बाले–भदन्त ! अवेदक जीव काल की अपेक्षा से कब तक रहता है ?

भगवान महावीर न कहा–गौतम ! अवेदक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं । जसेकि–१–सादि अनन्त और २ सादि सान्त । इन मे से जो सादि सान्त है उनकी जघन्य स्थिति एक समय और उत्कृष्ट अन्तमुहूत की हाती है।

अनगार गौतम बाले–भगवन् ! सवेदक जीव का अन्तर कितन समय का होना है ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! अनादि अनन्त तथा अनादि-सान्त सवदक जीव का अन्तर नही हाता है। किंतु सादि-सान्त सवेदक जीव का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तमुहूत का होता है।

---

*पुद्गलपरिवतन के अथ के लिए देखो श्री जैनसिद्धान्त बोलसंग्रह भाग ३, पृष्ठ १३८।

अनगार गौतम बोले—भगवन्! अवेदक जीव का अन्तर कितने समय का होता है?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम! सादि अनन्त अवेदक जीव का अन्तर नहीं होता है, किन्तु सादि-सान्त अवेदक जीव का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल का होता है। यावत् क्षेत्र से अनन्त असंख्य पुद्गलपरावर्तन का होता है।

सवेदक और अवेदक जीवों का अल्प बहुत्व इस प्रकार है—

सब से कम अवेदक जीव हैं, और सवेदक इन से अनन्त गुणा अधिक हैं। सकषायी और अकषायी जीवों का अन्तर सवेदक जीवों के समान समझना चाहिए।

अथवा सब जीव दो प्रकार के कहे गए हैं। जैसे कि-सलेश्य (कृष्ण आदि लेश्याओं वाले) और अलेश्य (लेश्याओं से रहित)। सब से कम अलेश्य हैं सलेश्य इन से अनन्त गुणा अधिक होते हैं।

मूल पाठ

*णाणी चेव अण्णाणी चेव। णाणी णं भंते! कालओ० ? २ दुविहे पण्णत्ते—साईए वा अपज्जवसिए, सादीए वा सपज्जवसिए। तत्थ णं जे से सादीए सपज्ज

---

* ज्ञानिनश्चैव अज्ञानिनश्चैव। ज्ञानी भदन्त! कालतः ? २ द्विविधः प्रज्ञप्तः। साद्यिको वा अपर्यवसितः, सादिको वा सपर्यवसितः। तत्र यः सादिकः सपर्यवसितः स उत्कर्षेण षट्षष्टि-सागरोपमाणि सातिरेकाणि।

वसिते, स जहण्णण अतोमुहुत्त उक्कोसेण छावट्ठिसाग-रोवमाइ सातिरगाइ अण्णाणी जहा सवदया। णाणिस्स अतर—जहण्णण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण अणत काल, अवड्ढ पोग्गलपरियट्ट देसूण। अण्णाणियस्स दोण्ह वि आदिल्लाण णत्थि अतर, सादियस्स सपज्ज वसियस्स जहण्णण अतोमुहुत्त, उक्कोसेण छावट्ठि सागरोवमाइ साइरेगाइ। अप्पाबहु सव्वत्थोवा णाणी अण्णाणी अणतगुणा।

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता—सागारोवउत्ता य अणागारोवउत्ता य, सचिट्ठणा अतर च जहण्णण उक्कोसेण वि अतोमुहुत्त अप्पाबहु सागारोवउत्ता सखे०।

सस्कृत–व्याख्या

अहव त्यादि अथवा द्विविधा सवजीवा प्रज्ञप्तास्तद्यथा—सज्ञिनश्च

सातिरेकान्तरम्—जघन्येन अन्तमुहूर्तम् उत्कर्षेण अनन्त कालम् अपार्ध पुद्गलपरिवर्त देशोनम्। अज्ञानिना द्वयोरपि आद्ययोर्नास्त्यन्तरम्। सादिकस्य सपर्यवसितस्य जघन्येन अन्तमुहूर्तम् उत्कर्षेण षटषष्टि सागरोपमानि सातिरेकानि। अल्पबहुत्वम्—सर्वस्तोका ज्ञानिन अज्ञानिनोऽनन्तगुणा।

अथवा द्विविधा सवजीवा प्रज्ञप्ता। साकारोपयुक्ताश्च अनाकारोपयुक्ताश्च। सस्थानम् अन्तर च जघन्येन उत्कर्षेणापि अन्तमुहूर्तम्। अल्पबहुत्वम—साकारो० सख्य०।

पर्यवसितः, तत्र सलेश्यस्य कायस्थितिरनन्तरं चाऽसिद्धस्यैव अलेश्यस्य कायस्थितिरन्तरं च यथा सिद्धस्य । अल्पबहुत्वं प्राग्वत् ।

भूयः प्रकारान्तरेण द्वैविध्यमाह—अथवे त्यादि अथवा द्विविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—ज्ञानिनश्च अज्ञानिनश्च ज्ञानमेषामस्तीति ज्ञानिनः न ज्ञानिनोऽज्ञानिनः मिथ्याज्ञाना इत्यर्थः ।

सम्प्रति कायस्थितिमाह—'णाणी णं' मित्यादि—प्रश्नसूत्रं सुगमम् । भगवानाह—गौतम ! ज्ञानी द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—सादिको वा अपर्यवसितः स च केवली केवलज्ञानस्य साद्यपर्यवसितत्वात् सादिको वा सपर्यवसितः मतिज्ञानादिमान् मतिज्ञानादीनां छाद्मस्थिकतया सादि सपर्यवसितत्वात् । तत्थ णं' मित्यादि तत्र योऽसौ सादिकः सपर्यवसितः स जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं सम्यक्त्वस्य जघन्यत एतावन्मात्रकालत्वात् सम्यक्त्ववतश्च ज्ञानित्वात् यथोक्तम्—सम्यग्दृष्टेर्ज्ञानं मिथ्यादृष्टेर्विपर्यास इति उत्कर्षतः षट्षष्टि सागरोपमाणि सातिरेकाणि सम्यग्दर्शनकालस्याप्युत्कर्षत एतावन्मात्रत्वात् अप्रतिपतितसम्यक्त्वस्य विजयादिगमन श्रवणात्, तथा च भाष्यम्—

दो वारे विजयाइसु गयस्स तिन्निऽच्चुए अहव ताइं ।
अइरेगं नर-भविय नाणाजीवाण सव्वद्धा* ॥ १ ॥

अण्णाणी णं भंते ! इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमम् भगवानाह—गौतम ! अज्ञानी त्रिविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—अनादिको वाऽपर्यवसितः अनादिको वा सपर्यवसितः तत्रानाद्यपर्यवसितो यो न जातुचिदपि सिद्धिं गन्ता अनादिसपर्यवसितो योऽनादिमिथ्यादृष्टिः सम्यक्त्वमासाद्याप्रतिपतित सम्यक्त्व एव क्षपकश्रेणिं प्रतिपत्स्यते सादिसपर्यवसितः सम्यग्दृष्टिर्भूत्वा जातमिथ्यादृष्टिः स जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं सम्यक्त्वात् प्रतिपत्य पुनरन्त

---

*द्वौ वारौ विजयादिषु गतस्य अथवा त्रीनच्युते तानि ।
अतिरेकां नर भविकं नानाजीवानां सर्वाद्धा ॥ १ ॥

वमिते, म जहण्णण अतोमुहुत्त उक्कोसेण छावट्ठिमाग रोवमाइ सातिरगाइ अण्णाणी जहा सवेदया। णाणिम्स अतर–जहण्णण अतामुहुत्त, उक्कोसेण अणत काल, अवड्ढ पोग्गलपरियट्ट देसूण । अण्णाणियस्स दोण्ह वि आदिल्लाण णत्थि अतर, सादियस्स सपज्ज-वसियस्स जहण्णण अतामुहुत्त, उक्कोसेण छावट्ठि सागरोवमाइ सादरगाइ । अप्पाबहु मव्वत्थोवा णाणी अण्णाणी अणतगुणा ।

अहवा दुविहा मव्वजीवा पण्णत्ता—सागरोवउत्ता य अणागारोवउत्ता य, सचिट्ठणा अतर च जहण्णण उक्कोसेण वि अतामुहुत्त अप्पाबहु सागरोवउत्ता सखे० ।

सस्कृत–व्याख्या

अथवा द्विविधा सवजीवा प्रज्ञप्तास्तद्यथा—सलेश्याश्च

ज्ञानिनोऽन्तरम्—जघन्येन अन्तमुहूतम् उत्कर्षेण अनन्त कालम् अपाध पुद्गलपरिवर्तं देशोनम । अज्ञानिनो द्वयोरपि आद्ययोर्नास्त्यन्तरम् । सादिकस्य सपयवसितस्य जघन्येन अन्तमुहूतम उत्कर्षेण षट्षष्टि सागरोपमानि सातिरेकानि । अल्पबहुत्वम्—सवस्तोका ज्ञानिन अज्ञानिनोऽनन्तगुणा ।

अथवा द्विविधा सवजीवा प्रज्ञप्ता । साकारोपयुक्ताश्च अनाकारोपयुक्ताश्च । सस्थानम् अन्तर च जघन्येन उत्कर्षेणापि अन्तमुहूतम् । अल्पबहुत्वम्—साकारो० सख्य ।

मन्याश्च, तत्र सर्व वस्य कायस्थितिरन्तर चासिद्धस्यैव अतः ग्रन्थ कायस्थितिरन्तर । यथा सिद्धस्य । अल्पबहुत्व प्राग्वत् ।

अथ प्रकारान्तरेण त्रिविध्यमाह - अ व त्यादि अथवा त्रिविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्तास्तद्यथा—ज्ञानिनश्च अज्ञानिनश्च ज्ञानमज्ञानमस्तीति ज्ञानिन न ज्ञानिनोऽज्ञानिन मिथ्याज्ञाना इत्यर्थ ।

सम्प्रति कायस्थितिमाह —'णाणी णं भंते'—इत्यादि प्रश्नसूत्र सुगमम । भगवानाह—गौतम ! ज्ञानी द्विविध प्रज्ञप्तस्तद्यथा—सादिको वा अपर्यवसित स च केवली केवलज्ञानस्य साद्यपर्यवसितत्वात् सादिको वा सपर्यवसितः मतिज्ञानादिमान मतिज्ञानादीना छाद्मस्थिकतया सादिसपर्यवसितत्वात् । तत्थ णं' इत्यादि तत्र योऽसौ सादिक सपर्यवसित स जघन्येनान्तर्मुहूर्त सम्यक्त्वस्य जघन्यत एतावन्मात्रकालत्वात सम्यक्त्वपतन्च ज्ञानित्वात् यथावस्तु—सम्यग्दृष्टर्यानि मिथ्यादृष्टेर्विपर्यास इति वचनात् उत्कर्षत षट्षष्टि सागरोपमाणि सातिरेकाणि सम्यग्दर्शनस्य अप्रतिपतितस्य उत्कर्षत एतावन्मात्रत्वात् अप्रतिपतितसम्यक्त्वस्य विजयादिगमन श्रवणात् तथा च भाष्यम्—

दो वारे विजयाइसु गयस्स तिन्निऽच्चुए अहव ताइं ।
अइरेग नर-भविय नाणाजीवाण सव्वद्धा* ॥ १ ॥

अण्णाणी णं भंते इत्यादि प्रश्नसूत्र सुगमम भगवानाह—गौतम ! अज्ञानी त्रिविध प्रज्ञप्तस्तद्यथा—अनादिको वाऽपर्यवसित अनादिको वा सपर्यवसित तत्रानाद्यपर्यवसितो यो न जातुचिदपि सिद्धिं गन्ता अनादिसपर्यवसितो यो नादिमिथ्यादृष्टि सम्यक्त्वमासाद्याप्रतिपतित सम्यक्त्व एव क्षपकश्रेणि प्रतिपत्स्यते सादिसपर्यवसित सम्यग्दृष्टिर्भूत्वा जातमिथ्यादृष्टि स जघन्येनान्तर्मुहूर्त सम्यक्त्वात् प्रतिपत्य पुनरन्त

---

*द्वौ वारौ विजयादिषु गतस्य अथवा त्रीनच्युते तानि ।
अतिरेका नर भविकं नानाजीवानां सर्वाद्धा ॥ १ ॥

मुहूर्तेन कस्यापि सम्यग्दर्शनावाप्ति—सम्भवात् उत्कर्षेणानन्तं कालम् अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः क्षेत्रतोऽपार्द्धपुद्गलपरावर्त्तदेशोनम् । साद्यपर्यवसितस्य पुनर्नास्त्यन्तरं तस्य प्रतिपातासम्भवात्— ण्णाणिस्स णं भंते !' इत्यादि ज्ञानिनो भदन्त ! अन्तरं कालतः कियच्चिरं भवति ? भगवानाह— गौतम ! सादिकस्यापर्यवसितस्य नास्त्यन्तरम् अपर्यवसितत्वेन सदा तद्भावापरित्यागात् सादिकस्य सपर्यवसितस्य जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं, एतावता मिथ्यादर्शनकालेन व्यवधाने भूयोऽपि ज्ञानभावात् उत्कर्षेणानन्तं कालम् अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः कालतः क्षेत्रतोऽपार्द्धं पुद्गलपरावर्त्तं देशोनं सम्यग्दृष्टेः सम्यक्त्वात्प्रतिपतितस्यतावन्तं कालं मिथ्यात्वमनुभूय तदनन्तरमवश्यं सम्यक्त्वासादनात्— अण्णाणिस्स णं भंते !' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं भगवानाह—गौतम ! अनाद्यपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरम् अपर्यवसितत्वादेव अनादिसपर्यवसितस्यापि नास्त्यन्तरं अवाप्तकेवलज्ञानस्य प्रतिपाताभावात् । सादिसपर्यवसितस्य जघन्येनान्तर्मुहूर्त्तं जघन्यस्य सम्यग्दर्शनकालस्यैतावन्मात्रत्वात् उत्कर्षतः षट्षष्टिं सागरोपमाणि सातिरेकाणि एतावतो पि कालादूर्ध्वं सम्यग्दर्शनप्रतिपाते सत्यज्ञानभावात् । अल्पबहुत्वसूत्रं प्राग्वत् । प्रकारान्तरेण द्वैविध्यमाह अहवेत्यादि अथवा द्विविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—साकारोपयुक्ताश्च अनाकारोपयुक्ताश्च । सम्प्रति कायस्थितिमाह सागारोवउत्ता णं भंते ! इह छद्मस्था एव सर्वजीवा विवक्षिता न केवलिनोऽपि विचित्रत्वात् सूत्रगतेः इति द्वयानामपि कायस्थितावन्तरे चकसामयिकोऽप्युच्येत । अल्पबहुत्व—चिन्तायां सर्वस्तोका अनाकारोपयुक्ता अनाकारोपयोगस्य स्तोककालतया पृच्छासमये सदा स्तोकानामेवावाप्यमानत्वात् । साकारोपयुक्ता सङ्ख्येयगुणा अनाकारोपयोगाद्धातः साकारोपयोगाद्धायाः सङ्ख्येयगुणत्वात् ।

हिन्दी-भावार्थ

अथवा सर्वजीव दो प्रकार के कहे गए हैं। जैसेकि ज्ञानी और अज्ञानी।

अनगार गौतम बोले—भगवन्! ज्ञानी जीव कब तक रहते हैं?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम! ज्ञानी जीव दो प्रकार के होते हैं। जैसेकि—सादि अनन्त और सादि सान्त। इनमें जो जीव सादि सान्त होते हैं उनकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक ६६ सागरोपम की होती है। अज्ञानी जीवों का सवेदक जीवों के समान समझना चाहिए। ज्ञानी जीवों का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट अनन्तकाल तक होता है। अनन्तकाल के भी अनन्त भेद होते हैं किन्तु प्रस्तुत में उस अनन्त का ग्रहण करना चाहिए जिसमें कुछ कम अपार्ध पुद्गल परावर्तन जितना समय लग जाता है। पहले दो प्रकार के अज्ञानी जीवों का अन्तर नहीं होता है परन्तु सादि सान्त अज्ञानी जीवों का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक ६६ सागरोपम तक होता है। इन जीवों का अल्पबहुत्व इस प्रकार है—

सब से कम ज्ञानी जीव हैं। इन की अपेक्षा अज्ञानी जीव अनन्तगुणा अधिक हैं।

अथवा सर्वजीव दो प्रकार के कहे गए हैं। जैसेकि—

१—साकारोपयुक्त (ज्ञानोपयोग वाले) २—अनाकारोपयुक्त (दर्शनोपयोग वाले)। टीकाकार के मतानुसार यहां सर्वजीव शब्द से छद्मस्थ जीवों का ही ग्रहण करना सूत्रकार का इष्ट है। उनके कथनानुसार यहां केवली और ... का ग्रहण नहीं करना चाहिए। इन दोनों प्रकार के ...

अवस्थितिकाल और अन्तरकाल जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। इन का अल्पबहुत्व इस प्रकार है—

सब से कम अनाकारोपयोग वाले जीव हैं और साकारोपयोग वाले जीव इन की अपेक्षा संख्येय गुणा अधिक हैं।

मूल पाठ

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा—आहारगा चेव अणाहारगा चेव।

आहारए णं भंते ! जाव केवचिरं होति ?

गोयमा ! आहारए दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—छउमत्थआहारए य केवलिआहारए य।

छउमत्थआहारए णं जाव केवचिरं होति ?

गोयमा ! जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं दुसमयऊणं, उक्को० असंखेज्जं कालं जाव कालो खेत्तओ अंगुलस्स

---

* अथवा द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता। तद्यथा—आहारकाश्चैव, अनाहारकाश्चैव। आहारकः भदन्त ! यावत् कियच्चिरं भवति ? गौतम ! आहारको द्विविधः प्रज्ञप्तः। तद्यथा—छद्मस्थाहारकश्च, केवलि आहारकश्च। छद्मस्थाहारकः यावत् कियच्चिरं भवति ? गौतम ! जघन्येन क्षुल्लकं भवग्रहणं द्विसमयोनम् उत्कर्षेण असंख्येयकालं यावत् कालतः क्षेत्रतोऽङ्गुलस्य असंख्येयभागम्। केवलि आहारको यावत् कियच्चिरं भवति ? गौतम ! जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम् उत्कर्षेण देशोना पूर्वकोटिः। अनाहारकः भदन्त ! कियच्चिरं० ? गौतम ! अनाहारको द्विविधः प्रज्ञप्तः। तद्यथा—छद्मस्थानाहारकश्च केवलि अनाहारकश्च।

असंखेज्जतिभाग।

केवलिआहारए ण जाव केवचिर होइ ?

गोयमा ! जहण्णेण अंतोमुहुत्त उक्कोसेण देसूणा पुव्वकोडी।

अणाहारए ण भंते ! केवचिर० ?

छद्मस्थानाहारको यावत् कियच्चिर भवति० ? गौतम ! जघन्येन एक समयम्, उत्कर्षेण द्वौ समयौ । केवलि अनाहारको द्विविध प्रज्ञप्त तद्यथा—सिद्धकेवलि-अनाहारकश्च, भवस्थकेवलि अनाहारकश्च । सिद्ध केवलि अनाहारको भदन्त ! कालत कियच्चिर भवति ? सादिको-पय-वसित । भवस्थकेवलि अनाहारको भदन्त ! कतिविध प्रज्ञप्त ? भवस्थ केवलिमनाहारका द्विविध प्रज्ञप्त—सयोगिभवस्थकेवलि अनाहारकश्च अयोगि भवस्थकेवलि अनाहारकश्च । सयोगी भवस्थकेवलि अनाहारको भदन्त ! कालत कियच्चिर० ? अजघन्यानुत्कर्षेण त्रीन् समयान् । अयोगिभवस्थकेवलि० जघन्येन अन्तमुहूतम् उत्कर्षेण अन्तर्मुहूतम् । छद्मस्थाहारकस्य कियन्तं कालमन्तरम० ? गौतम ! जघन्येन एक समयम् उत्कर्षेण द्वौ समयौ । केवलि आहारकस्य अन्तरम्—अजघन्यानुत्कर्षेण त्रीन् समयान् । छद्मस्थानाहारकस्यान्तरम्—जघन्येन क्षुल्लक भवग्रहण द्विसमयोनम् उत्कर्षेण असंख्येय काल यावद् अगुलस्यासंख्येयभागम् ।

सिद्ध-केवलि अनाहारकस्य सादिकस्य अपयवसितस्य नास्त्यन्तर सयोगिभवस्थ-केवलि-अनाहारकस्य जघन्येन अन्तमुहूतम्, उत्कर्षेणापि । अयोगिभवस्थकेवलि अनाहारकस्य नास्त्यन्तरम् । एतेषा भदन्त ! आहारकाणामनाहारकाणाञ्च कतरे कतरेभ्योऽल्पा बहुव ? गौतम ! सवस्तोका अनाहारका, आहारका असंख्येया ।

गोयमा ! अणाहारए दुविहे पण्णत्ते, तजहा-छउमत्थअणाहारए य केवलिअणाहारए य।

छउमत्थअणाहारए ण जाव केवचिर होति ?

गायमा ? जहण्णेण एक्क समय उक्कोस्सेण दो समया । केवलिअणाहारए दुविहे पण्णत्ते, तजहा—सिद्ध—केवलिअणाहारए य भवत्थकेवलिअणाहारए य।

सिद्ध—केवलि अणाहारए ण भते ! कालओ केवचिर होति ? सातिए अपज्जवसिए।

भवत्थकेवलि-अणाहारए ण भते ! कइविहे पण्णत्ते ?

भवत्थकेवलि-अणाहारए दुविहे पण्णत्ते—सजोगिभवत्थकेवलिअणाहारए य अजोगिभवत्थकेवलिअणाहारए य।

सजोगिभवत्थकेवलिअणाहारए ण भते ! कालओ केवचिर होति ?,

अजहण्णमणुक्कोसेण तिण्णि समया। अजोगिभवत्थकेवलिअणाहारए जह० अतो०, उक्को० अतोमुहुत्त।

छउमत्थआहारगस्स केवलिय काल अतर० ?,

गोयमा ! जहण्णेण एक्क समय, उक्को० दो समया। केवलिआहारगस्स अतर—अजहण्णमणुक्कोसेण तिण्णि समया । छउमत्थअणाहारगस्स अतर

जहण्णेणं खुड्डागभवग्गहणं दुसमयऊणं उक्को० असंखेज्ज काल जाव अंगुलस्स असंखेज्जतिभाग। सिद्धकेवलिअणाहारगस्स सातीयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं। सजोगिभवत्थकेवलिअणाहारगस्स जह० अंतो० उक्कोसेण वि, अजोगिभवत्थकेवलिअणाहारगस्स णत्थि अंतरं।

एएसि णं भंते ! आहारगाणं अणाहारगाण य कयरे २ हिंतो अप्पाबहु० ?

गोयमा ! सव्वत्थोवा अणाहारगा, आहारगा असंखेज्जा।

संस्कृत—व्याख्या

अथ च स्यात् अथवा द्विविधा सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—आहारकाश्च अनाहारकाश्च। अधुना कायस्थितिमाह— आहारगे णं भंते ! इत्यादि। प्रश्नसूत्रं सुगमं भगवानाह—गौतम ! आहारको द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा-छद्मस्थाहारकः केवल्याहारकः तत्र छद्मस्थाहारको जघन्येन क्षुल्लकभवग्रहणं द्विसमयोनं एतच्च जघन्याधिकाराद्विग्रहेणागत्य क्षुल्लकभवग्रहणवत्सूत्पादे परिभावनीय, तत्र यद्यपि नाम लोकान्तनिष्कुटादावस्थाने चतुःसामायिकी पञ्चसामयिकी च विग्रहगतिर्भवति तथाऽपि बाहुल्येन त्रिसामयिकयेवेति तामेवाधिकृत्य सूत्रमिदमुक्तम्।

इत्थमेवान्येषामपि पूर्वाचार्याणां प्रवृत्तिदर्शनात् उक्तञ्च—' एकं द्वौ वा आहारक ' (तत्त्वा० २ सू० ३१)

इति त्रिसामयिकया च विग्रहगत्यावाओ द्वौ समयावेनाह किं इति तास्या हानमुक्त उत्कर्पतोऽमहूर्त्तयय -कालम् प्रमहूर्त्तयया उत्सर्पिण्य-वसर्पिण्य कान्त क्षत्रताङ गुमस्थासहूर्त्तयमो भाग , विमुक्त भवति?-ग्रङ गुलमात्रक्षत्राङ गलामहूर्त्तयमभागे यावन्त आकाशप्रदेशास्तावत प्रतिसमयमकप्रदेशापहारे यावता कालेन निर्लेपा भवन्ति तावत्य उत्सर्पिण्यवसर्पिण्य इति तावन्त हि कालमविग्रहेणोत्पाद्यते एवि ग्रहात्पत्तौ च सततमाहार । केवल्याहारकप्रश्नसूत्र पाठसिद्ध भगवानाह—गौतम! जघन्येनान्तमुहूर्त्त स चान्तकृत् केवली प्रतिपत्तव्य उत्कर्षत। देशोना पूवकोटि सा च पूवकोटयायुपा नववर्पादारभ्यात्पन्न केवलज्ञानस्य परिभावनीया। अनाहारकविषय सूत्रमाह—अनाहारए ण भते! इ य दि प्रश्नसूत्र सुगमम् भगवानाह—गौतम! अनाहारको द्विविध प्रज्ञप्त —छद्मस्थोऽनाहारक कवल्यनाहारकश्च। छद्मस्थाना हारकप्रश्नसूत्र सुगमम। भगवानाह—गौतम! जघन्यत एक समय जघन्याधिकारान्द्विसामयिकीं विग्रहगतिमपेक्ष्यतदवसातव्य उत्कर्षता द्वौ समयौ त्रिसामयिक्या एव विग्रहगतेर्बाहुल्येनाश्रयणात्। आह च चूर्णिकृत्-

यद्यपि भगवत्या चतु सामयिकोऽनाहारक उक्तस्तथाऽप्यत्र नाङ्गीक्रियते कादाचित्कोऽसौ भावो येन बाहुल्यमेवाङ्गीक्रियते, बाहुल्याच्च समयद्वयमेवे' ति। केवल्यनाहारकसूत्र पाठसिद्ध, भगवानाह—गौतम! केवल्यनाहारको द्विविध प्रज्ञप्तस्तद्यथा भवस्थकेवल्यनाहारक सिद्धकेवल्यनाहारक। सिद्धकेवलिअणाहारए ण भते! इत्यादि प्रश्न-सूत्र सुगमम्। भगवानाह—गौतम! सादिकापर्यवसित, सिद्धस्य साद्यपर्यवसितत्वात्ऽनाहारकत्वस्यापि तद्विशिष्टस्य तथाभावात्। भवस्थकेवलि-अणाहारए ण भते! इत्यादि प्रश्न सूत्र सुगमम् भगवानाह—गौतम! भवस्थकेवल्यनाहारको द्विविध प्रज्ञप्त —सयोगिभवस्थकेवल्यनाहारको-ऽयोगिभवस्थकेवल्यनाहारकश्च तत्रायोगिभवस्थकेवल्यनाहारकप्रश्नसूत्र

सुगम भगवानाह—गौतम ! यद्यप्येकसमयादिसमुत्पद्यमानः समुत्पन्न प्रथमसमये न च हि तत्र्यवस्था तस्यां नियमान्नाहारक औदारिकादि शरीराभावात् द्वितीयादिसमये च अपवर्त्त उत्कर्षतश्चाष्टसमय वर्ष अथ पञ्चम् चतुष्टमधिकमवसेयम् अत उत्पन्नानाम् याथासभाग्यात् । 'समानिमन बाह्यवलिप्रमाहारए ण भव !' इत्यादि प्रश्नसूत्र सुगम भगवानाह—गौतम ! एकसमयोरपूर्वण द्वय समया त्रयाणामपदिक- केवलिसमुद्घाताग्रतायां तृतीयचतुर्थपञ्चमरूपा सैव कार्मणकायय योगाभावात् उक्तश्च—

कार्म्मणाहारकाणां चतुर्थ पञ्चम तृतीय च ।
समयत्रयेऽपि तस्माद्भवत्यनाहारको नियमात् ॥१॥

साम्प्रतम वर्द्धिनपदा- इदमप्याहारकस्य ण भ !' इत्यादि । इदमप्याहारकस्य भ न ! यन्तर कालत क्रियच्चिर भवति? भगवानाह— गौतम ! अत्र द्वे समये समयमुत्पन्नो द्वौ समयौ यावानेव हि कालो अपवर्त्त उत्कर्षेण त्रिसमयानाहारकस्य तावानाहारकस्यादाहारकस्य स च कालो अपवर्त्ते च समय, उत्कर्षतो बाहुल्यमन्तर्मुहूर्त्तस्य च्यवहितमानो- विनाशविषयो विग्रहगतो द्वौ एकसमयादिचाहारकस्यान्तरं सामर्थ्येति । कवलाहारकस्यान्तरसूत्रं सुगमम् भगवानाह—गौतम ! एकसमयोरपूर्वेण द्वय समया केवलाहारको हि सर्वोऽपि सयोगिकेवली कवलाहार- कर्त्ता भीरत समनन्तर सयोगी प्राप्तिरूपर्व केवलाहारकस्य दर्शिनि । केवलाहारकस्यान्त विचिन्तयन् प्रश्नमपवर्त्ताहारकादनु— इदमप्याहारकस्य ण भव !' इत्यादि प्रश्नसूत्र सुगमम् भगवानाह—गौतम! अत्र हेतु साम्प्रतमपवर्त्तनियमतं च उत्कर्षतोऽन्तर्मु- हूर्त्त काल इत्यत्र व्यवच्छेदो भाव इत्यत्र हि इत्यादनुर, कस्य कारण च नैव सयोगिनोऽप्याहारकस्यान्तर, इदमप्यनाहारकस्य च अपवर्त्त कलाऽप्यनुत्पन्नो व्यवच्छेदो
कारण एकतोऽत्यन्त मनुष्यो काल, तत्रैकस्तु काय

प्रदेशोत्पन्नसम्भवान् ततश्चन्मस्थानाद्दारकस्य जघन्यत उत्कर्षतश्चनाव
दन्तरमिति । अथ स्थान २ क्षुल्लकभवग्रहणमित्युक्त तत्र क्षुल्लकभव
ग्रहणमिति क उच्यते ? उच्यते क्षुल्लं लघुस्तोकमित्यर्कोऽथ, क्षुल्लभव
क्षुल्लकम्-एकायुष्कसवेदनकालो भवस्तस्य ग्रहण-सब यम भवग्रहण,
क्षुल्लक च तद् भवग्रहण च क्षुल्लकभवग्रहण तच्चावलिकातद्विपन्चमान
षटपञ्चाशदधिकमावलिकाशतद्वयम् अथैकस्मिन् आनप्राण वियति
क्षुल्लकभवग्रहणानि भवन्ति ? उच्यते—किञ्चित्समधिकानि सप्तदश ।
कथमिति चदुच्यते—इह मुहूर्तमध्ये संवसङ्ख्यया पञ्चषष्टि सहस्राणि
पञ्चशतानि षट्त्रिंशानि क्षुल्लकभवग्रहणानां भवन्ति यत उक्त चूर्णौ-

पणट्ठिसहस्साइं पचय सया हवति छत्तीसा ।
खुड्डागभवग्गहणा हवति अंतोमुहुत्तंमि ॥१॥

आनप्राणाश्च मुहूर्त आणि सहस्राणि सप्तशतानि त्रिसप्तत्यधिकानि
उक्तञ्च— तिन्नि सहस्सा सत्त य सयाइं तेवत्तरिं च उस्सासा ।
एस मुहुत्तो भणिओ सव्वेहिं अणतनाणीहिं ॥१॥

ततोऽत्र त्रैराशिककर्मावतार यदि त्रिसप्तत्यधिकसप्तशतोत्तरत्रिभि
सहस्रै रुच्छ्वासाना पञ्चषष्टि सहस्राणि पञ्चशतानि षट्त्रिंशानि क्षुल्लक
भवग्रहणानां भवन्ति तत एकेनोच्छ्वासेन किं लभामहे? राशित्रयस्थापना-
३७७३।६५५३६।१। अत्रान्त्यराशिना एककलक्षणेन मध्यराशिगुणनाज्जात
स तावानेव एकेन गुणित तदेव भवतीति न्यायात् तत आद्येन राशिना
भागहरणं लब्धा सप्तदश क्षुल्लकभवा शेषास्त्वेनातिष्ठन्ति, तत्र
त्रयोदश शतानि पञ्चनवत्यधिकानि उक्तञ्च—

सत्तरस भवग्गहणा खुड्डाण हवति आणुपाणंमि ।
तेरस चेव सयाइं पचाणउइं चेव अंसाण ॥१॥

अथताशखिभिरंशै कियत्य आवलिका लभ्यन्ते ? उच्यते,
समधिकत्रतुनवति । तथाहि—षटपञ्चाशदधिकेन शतद्वयेनावलिकानां
त्रयोदश शतानि पञ्चनवत्यधिकानि गुण्यन्ते जातानि त्रीणि लक्षाणि
सप्तपञ्चाशत्सहस्राणि शतमेकं विंशत्यधिकं ३५७१२०, छेदराशि स

एव ३७७३ लब्धा चतुर्नवतिरावलिका शेषास्त्वेका भवतिकाधास्ति-ष्ठन्ति चतुर्विंशति शतानि अष्टपञ्चाशानि छेद स एव २४५८/३७७३ एवं यश एकस्मिन्प्रानप्राण आवलिका सङ्ख्यातुमिष्यते तदा सप्तदश शतानि षट्पञ्चाशदधिकाभ्यां शताभ्यां गुण्यन्ते गुणयित्वा चोपरितनाश्चतुर्नवतिरावलिका प्रक्षिप्यन्ते तत आवलिकाना चतुश्चत्वारिंशत् शतानि—षट् चत्वारिंशानि भवन्ति उक्तञ्च—

एक्का उ आणुपाणू चायालास सया उ छायाला।
आवलियपमाणेण अणतनाणीहि निद्दिट्ठा ॥१॥

यदि पुनर्मुहूर्त्ते आवलिका सङ्ख्यातुमिष्यन्त तत एतान्येव चतुश्चत्वारिंशच्छतानि त्रिसप्तत्यधिकानि भवन्तीति सप्तत्रिंशच्छतानि त्रिसप्तत्यधिकगुण्यन्ते जाता एका कोटी सप्तषष्टि शतसहस्राणि चतु सप्तति सहस्राणि सप्तशतानि अष्टापञ्चाशदधिकानि १६७७४७२८ येऽपि चावलिकाया अंशाश्चतुर्विंशतिशतानि अष्टपञ्चाशदधिकानि २४५८ तेऽपि मुहूर्त्तगतोच्छ्वासराशिना ३७७३ गुण्यन्ते अन्यथ छेदस्य ते भागा इत्यावलिकानयनाथ तेनैव भागो ह्रियते लब्धा स्तावत्य एवावलिकाश्चतुर्विंशतिशतान्यष्टापञ्चाशानि २४५८ तानि मूलराशौ प्रक्षिप्यन्ते जाता मूलराशिरेका कोटि सप्तषष्टिलक्षा सप्तसप्तति सहस्राणि द्वे शते षोडशोत्तरे, एतावन्त्य आवलिका मुहूर्त्ते भवन्ति यदि वा मुहूर्त्तगताना क्षुल्लकभवग्रहणाना पञ्चषष्टि सहस्राणि पञ्चशतानि षट्त्रिंशानि एकभवग्रहणप्रमाणेन षट्पञ्चाशेन शतद्वयेनावलिकाना गुण्यन्ते तथापि तावत्य एवावलिका भवन्ति उक्तञ्च—

एगा कोडी सतट्ठि लक्खा सत्तत्तरी सहस्सा य।
दो य सया सोलहिया आवलियाओ मुहुत्तमि ॥१॥

एव च यदुच्यते सखेज्जाओ आवलियाओ एगे ऊसासनीसासे इत्यादि तदतीव समीचीनमिति कृत प्रसङ्गेन प्रकृत प्रस्तुम।

सयोगिभवस्थकेवल्यनाहारकस्यान्तरमभिधित्सुराह—"सजो [illegible] वलिअणाहारयस्स ण [illegible]" इत्यादि प्रश्नसूत्र सुगमम्,

गौतम ! जघन्येनाप्यन्तमुहूर्त्तमुत्कर्षेणाप्यन्तमुहूर्त्त समुद्घातप्रतिपत्तेरनन्तरमेवान्तर्मुहूर्त्तेन शैलेशीप्रतिपत्तिभावात् नवरं जघन्यपदादुत्कृष्टपदं विशेषाधिकमवसातव्यं अयोग्यवस्थायामयोगिभवस्थकेवल्यनाहारकसूत्र नास्त्यन्तरम् अयोग्यवस्थायां सर्वस्याप्यनाहारकत्वात् । एवं सिद्धस्यापि साद्यपर्यवसितस्यानाहारकस्यान्तराभावो भावनीयः साम्प्रतमेतेषामाहारकानाहारकाणामल्पबहुत्वमाह— एएसि णं भंते !' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमम् भगवानाह—गौतम! सर्वस्तोका अनाहारका, सिद्धविग्रहगत्यापन्नसमुद्घातगतसयोगिकेवल्ययोगिकेवलिनामेवानाहारकत्वात् तेभ्य आहारका असंख्येयगुणा अथ सिद्धेभ्योऽनन्तगुणा वनस्पतिजीवास्ते च प्रायः आहारका इत्यनन्तगुणाः कथं न भवति ? उच्यते, इह प्रतिनिगोदमसंख्येयो भागः प्रतिसमयं सदा विग्रहगत्यापन्नो लभ्यते, अनाहारका —

*विग्गहगइमावन्ना केवलिणो समुहया अजोगी य ।
सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारगा जीवा ॥१॥

इतिवचनात् ततोऽसंख्येयगुणा एवाहारका घटन्ते नानन्तगुणा इति । प्रकारान्तरेण भूयो द्वैविध्यमाह ।

हिन्दी-भावार्थ

अथवा सवजीव दो प्रकार से कहे गए है। जैसेकि—आहारक और अनाहारक ।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! जीव आहारक कब तक रह सकते हैं ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! आहारक जीव दो प्रकार के होते हैं । जैसेकि—छद्मस्थ—आहारक, और केवलिआहारक ।

अनागार गौतम बोले—भदन्त ! छद्मस्थ जीव आहारक

---

* विग्रहगत्यापन्ना केवलिनः समुद्धता अयोगिनश्च ।
सिद्धाश्चानाहाराः शेषा आहारका जीवाः ॥१॥

कब तक रहता है ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! जघन्य क्षुल्लक-भवग्रहण में दो समय कम काल तक। क्षुल्लक भवग्रहण का अर्थ होता है—२५६ आवलिकाओं का एक भव करना। उत्कृष्ट काल यावत् असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल तक। क्षेत्र से अंगुल के असंख्यातवें भाग तक। अर्थात् अंगुल के असंख्यातवें भाग में जितने आकाश प्रदेश हैं उनमें से एक एक आकाश प्रदेश को एक एक समय में निकालने पर जितने समय में सारे आकाश प्रदेश निकलें उतने उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल तक छद्मस्थ जीव आहारक रहते हैं।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! केवली भगवान आहारक कब तक रहते हैं ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट कुछ कम करोड़ पूर्व काल तक।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! जीव अनाहारक कब तक रहते हैं ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! अनाहारक जीव दो प्रकार के होते हैं। जैसे कि—छद्मस्थ अनाहारक और केवली अनाहारक। छद्मस्थ अनाहारक जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट दो समय तक। केवली अनाहारक दो प्रकार के कहे गये हैं। जैसे कि सिद्ध केवली अनाहारक और भवस्थ केवली अनाहारक।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! सिद्धकेवली जीव अनाहारक कब तक रहते हैं ?

भगवान महावीर ने कहा— ... क।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! भवस्थ केवली जीव अनाहारक कितने प्रकार के होते है ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! भवस्थकेवली अनाहारक जीव दो प्रकार के होते हैं। जैसे-सयोगी भवस्थ केवली अनाहारक और अयोगी भवस्थ केवली अनाहारक।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! सयोगी भवस्थ केवली जीव अनाहारक कब तक रहते है ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! सयोगी भवस्थ केवली जीव जघन्य और उत्कृष्ट तीन समय तक अनाहारक रहते हैं। और अयोगीभवस्थ केवली जीव जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त अनाहारक रहते हैं।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! छद्मस्थ आहारक जीव का अन्तरकाल कितना होता है ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट दो समय तक। केवली आहारक जीव का अन्तरकाल जघन्य और उत्कृष्ट तीन समय तक होता है। छद्मस्थ अनाहारक जीव का अन्तरकाल जघन्य दो समय कम क्षुल्लकभवग्रहण तक और उत्कृष्ट असंख्यात काल तक होता है, यावत क्षेत्र की अपेक्षा अंगुल का असंख्यातवा भाग। सिद्ध केवली अनाहारक जीव सादि अनन्त होते है इसलिए उनका अन्तर नही होता है। सयोगीभवस्थ केवली अनाहारक जीव का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त ही होता है। अयोगी भवस्थ केवली अनाहारक जीव का अन्तर नही होता है।

अनागार गौतम बोले—भदन्त ! इन आहारक और अनाहारक जीवो मे कौन अल्प हैं और कौन अधिक हैं ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! सब में कम अनाहारक जीव होते हैं और आहारक जीव इन से असंख्यात गुणा अधिक होते हैं।

मूल पाठ

*अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा—सभासगा अभासगा य।

सभासए णं भंते ! सभासए त्ति कालओ केवचिरं होति ?

गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

---

* अथवा द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्ता। तद्यथा—सभाषकाश्च अभाषकाश्च। सभाषको भदन्त ! सभाषक इति कालतः कियच्चिरं भवति ? गौतम ! जघन्येन एकं समयम् उत्कर्षेण अन्तर्मुहूर्तम्। अभाषको भन्त ! ० ? गौतम ! अभाषका द्विविधा प्रज्ञप्ताः। सादिको वा अपर्यवसितः सादिको वा सपर्यवसितः। तत्र यः स सादिकः सपर्यवसितः स जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम् उत्कर्षेण अनन्तं कालम् अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यो वनस्पतिकालः। भाषकस्य भदन्त ! कियत्कालमन्तरं भवति ? जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम् उत्कर्षेण अनन्तं कालं वनस्पतिकालः। अभाषकस्य सादिकस्य अपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरम्। सादिकसपर्यवसितस्य जघन्येन एकं समयम् उत्कर्षेण अन्तर्मुहूर्तम्। अल्पबहुत्वम्—सर्वस्तोकाः भाषकाः। अभाषका अनन्तगुणाः।

अथवा द्विविधाः सर्वजीवाः। सशरीरिणश्च अशरीरिणश्च। अशरीरिणो यथा सिद्धाः स्तोका अशरीरिणः। सशरीरिणः अनन्तगुणाः।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! भवस्थ केवली जीव अनाहारक कितने प्रकार के होते है ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! भवस्थकेवली अनाहारक जीव दो प्रकार के होते है। जैसेकि सयोगी भवस्थ केवली अनाहारक और अयोगी भवस्थ केवली अनाहारक।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! सयोगी भवस्थ केवली जीव अनाहारक कब तक रहते है ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! सयोगी भवस्थ केवली जीव जघन्य और उत्कृष्ट तीन समय तक अनाहारक रहते हैं। और अयोगीभवस्थ केवली जीव जघन्य अन्तमुहूत और उत्कृष्ट भी अन्तमुहूत अनाहारक रहते है।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! छद्मस्थ आहारक जीव का अन्तरकाल कितना होता है ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट दो समय तक। केवली आहारक जीव का अन्तरकाल जघन्य और उत्कृष्ट तीन समय तक होता है। छद्मस्थ अनाहारक जीव का अन्तरकाल जघन्य दो समय कम क्षुल्लक भवग्रहण तक और उत्कृष्ट असख्यात काल तक होता है, यावत क्षेत्र की अपेक्षा अगुल का असख्यातवा भाग। सिद्ध-केवली अनाहारक जीव सादि अनन्त होते हैं इसलिए उनका अन्तर नही होता है। सयोगीभवस्थ केवली अनाहारक जीव का अन्तर जघन्य अन्तमुहूत और उत्कृष्ट भी अन्तमुहूत ही होता है। अयोगी भवस्थ केवली अनाहारक जीव का अन्तर नही होता है।

अनागार गौतम बोले—भदन्त ! इन आहारक और अनाहारक जीवो मे कौन अल्प हैं और कौन अधिक हैं ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! सब से कम मनाहारक जीव हो। है और आहारक जीव इन से असंख्यात गुणा अधिक होते हैं।

मूल पाठ

*अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता, तंजहा—सभासगा अभासगा य।

सभासए णं भंते ! सभासए त्ति कालओ केवचिरं होति ?

गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

---

* अथवा द्विविधा सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः। तद्यथा—सभाषकाः अभाषकाश्च। सभाषको भदन्त ! सभाषक इति कालतः कियच्चिरं भवति ? गौतम ! जघन्येन एकं समयम् उत्कर्षेण अन्तर्मुहूर्तम्। अभाषको भदन्त ! ० ? गौतम ! अभाषको द्विविधः प्रज्ञप्तः। सादिको वा अपर्यवसितः सादिको वा सपर्यवसितः। तत्र यः स सादिकः सपर्यवसितः, स जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम् उत्कर्षेण अनन्तं कालम् अनन्ता उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यो वनस्पतिकालः। भाषकस्य भदन्त ! कियत्कालमन्तरं भवति ? जघन्येन अन्तर्मुहूर्तम् उत्कर्षेण अनन्तं कालं वनस्पतिकालः। अभाषकस्य सादिकस्य अपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरम्। सादिकसपर्यवसितस्य जघन्येन एकं समयम् उत्कर्षेण अन्तर्मुहूर्तम्। अल्पबहुत्वम् सर्वस्तोकाः भाषकाः। अभाषकाः अनन्तगुणाः।

अथवा द्विविधाः सर्वजीवाः। सशरीरिणश्च अशरीरिणश्च। अशरीरिणो यथा सिद्धाः स्तोकाः अशरीरिणः। सशरीरिणः अनन्तगुणाः

अभासग ण भन ! ०? गायमा !, अभासए दुविहे पण्णत्ते—सादए वा अपज्जवसिए, सातीए वा सपज्जवसिए, तत्थ ण जे स सादए सपज्जवसिए से जह० अतो० उक्को० अणत काल अणता उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीओ वणस्सतिकालो ।

भासगस्स ण भते ! केवतिकाल अतर होति ?

जह० अतो० उक्को० अतो० अणत काल वणस्सतिकालो । अभासग० सातीयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अतर, सातीयसपज्जवसियस्स जहण्णेण एक्क समय उक्को० अतो० । अप्पाबहु० सव्वत्थोवा भासगा, अभासगा अणतगुणा ।

अहवा दुविहा सव्वजीवा, ससरीरी य असरीरी य । असरीरी जहा सिद्धा थोवा असरीरी, ससरीरी अणतगुणा ।

संस्कृत–व्याख्या

अहव' इत्यादि अथवा द्विविधा सर्वजीवा प्रज्ञप्तास्तद्यथा भाषकाश्च अभाषकाश्च भाषमाणा भाषका इतरेऽभाषका । सम्प्रति कायस्थिति माह— सभासए ण भते ! —इत्यादि प्रश्नसूत्र सुगमम् ।

भगवानाह—गौतम ! जघन्येनैक समय भाषाद्रव्यग्रहणसमय एव मरणतोऽन्यतो वा कुतश्चित्कारणात्तद्व्यापारस्याप्युपरमात् उत्कर्षेणान्तमुहूर्त्त तावन्त काल निरन्तर भाषाद्रव्यग्रहणनिसर्गसम्भवात् । तत ऊर्ध्वं जीवस्वाभाव्यान्नियमत एवोपरमति । अभाषकप्रश्नसूत्र सुगमम् भगवानाह—गौतम ! अभाषका द्विविधा प्रज्ञप्तास्तद्यथा—सादिका वा

प्रयवसित सिद्ध सादिको वा सपयवसित स च पृथिव्यादि तत्र योऽसौ सादि सपयवसित स जघन्येनान्तमुहूर्त्त, भापणादुपरम्यान्तमुहूर्त्तेन कस्यापि भयोऽपि भापणप्रवत्त पथिव्यादिभवस्य वा जघन्यत एता वन्मात्रकालत्वात् उत्कपतो वनस्पतिकाल स चानन्ता उत्सर्पिण्यव सर्पिण्य कालत, क्षत्रतोऽनन्ता लोका असङ्ख्यया पुद्गलपरावर्त्ता ते च पुद्गलपरावर्त्ता आवलिकाया असङ्ख्यया भाग एतावन्त काल वनस्पतिष्वभापकत्वात् । साम्प्रतमन्तर चिचिन्तयिषुराह— भासगस्स ण भन्त !' इत्यादि प्रश्नसूत्र सुगमम् भगवानाह—गौतम ! जघन्येनान्त-र्मुहूर्त्तमुत्कर्पतो वनस्पतिकाल अभापककालस्य भापकान्तरत्वात् । अभापकसूत्र साद्यपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरमपर्यवसितत्वात्, सादिसपर्यव सितस्य जघन्येनक समयमुत्कर्पतोऽन्तमुहूर्त्त, भापककालस्याभापकान्तरत्वात् तस्य च जघन्यत उत्कर्पतश्चैतावन्मात्रत्वात् अल्पबहुत्वसूत्र प्रतीतम् । अहवा दुविहा सव्वजीवा—ससरीरा—असिद्धा असरीरा—सिद्धा ततः सर्वाण्यपि सशरीराशरीरसूत्राणि सिद्धासिद्धसूत्राणीव भावनीयानि ।

हिन्दी–भावार्थ

अथवा सवजीव दो प्रकार के होते हैं । जैसेकि-सभापक और अभापक ।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! सभापक जीव सभापकत्व रूप से कब तक रहते हैं ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त तक ।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! अभापक जीव अभापकत्व रूप से कब तक रहते हैं ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! ... प्रकार के कहे गये हैं—अनादि अनन्त और

जो सादि-सान्त जीव हैं उनका अवस्थितिकाल जघन्य अन्तमुहूर्त उत्कृष्ट अनन्तकाल तक। अर्थात अनन्त उत्सर्पिणि अवसर्पिणियां तक। जिस प्रकार वनस्पतिकाल अनन्त होता है वैसे ही इन जीवों का भी अवस्थितिकाल अनन्त समझना चाहिए।

अनगार गौतम बोले—भदन्त! भाषक जीवों का अन्तर कितने काल का होता है?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम! जघन्य अन्तमुहूर्त उत्कृष्ट वनस्पतिकाल अर्थात अनन्तकाल तक होता है। अभाषक सादि अनन्त जीवों का अन्तरकाल नहीं होता है। सादि-सान्त जीवों का अन्तरकाल जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त होता है। इन का अल्पबहुत्व इस प्रकार समझना चाहिए—

सब से कम भाषक जीव होते हैं। अभाषक जीव इन से अनन्त गुणा अधिक होते हैं।

अथवा सर्वजीव दो प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—सशरीरी और अशरीरी। अशरीरी जीवों को सिद्धों के समान समझना चाहिए। अशरीरी कम हैं, और सशरीरी इन से अनन्तगुणा अधिक होते हैं।

मूल पाठ

अहवा दुविहा सव्वजीवा पण्णत्ता तंजहा—चरिमा चेव, अचरिमा चेव।

अथवा द्विविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्ताः। तद्यथा—चरमाश्चैव अचरमाश्चैव। चरमो भदन्त! चरम इति कालतः कियच्चिरं भवति?

चरिमे णं भंते ! चरिम त्ति कालओ केवचिरं होति ?

गोयमा ! चरिमे अणाईए सपज्जवसिए । अचरिमे दुविहे—अणाईए वा अपज्जवसिए, साईए अपज्जवसिए । दोण्ह वि णत्थि अंतरं, अप्पाबहुयं—सव्वत्थोवा अचरिमा, चरिमा अणंतगुणा । सेत्तं चरिमदारं गयं अट्ठावीसइमं दारं ।

संस्कृत-व्याख्या

'चरम' इत्यादि चरमा —चरमभवा ये भव्यविशेषाः ते केवलं न, अचरमा —अभव्या सिद्धाश्च । चरमसूत्रं चरमा अनादिसपर्यवसिताः अन्यथा चरमत्वायोगात् । अचरमसूत्रे अचरमो द्विविध अनादिरपर्यवसितः—अभव्यो वा सादिरपर्यवसितः, सादिः अपर्यवसित एष सिद्धः । अनादिसपर्यवसितस्य अनादिपर्यवसितस्य सिद्ध । अन्तरसूत्रमाह— 'चरिमस्स णं भंते !' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमं उत्तरमाह—गौतम ! अनादिकस्य सपर्यवसितस्य नास्त्यन्तरं, चरमत्वापगमे सति पुनश्चरमत्वायोगात् अचरमस्यानादिअपर्यवसितस्य सादिअपर्यवसितस्य वा नास्त्यन्तरं अपर्यवसितत्वात् । अल्पबहुत्वे—सर्वस्तोका अचरमा, अभव्यानां सिद्धानां च अचरमत्वात्, चरमा अनन्तगुणा, सामान्यभव्यानामपि चरमत्वाद् अनन्तगुणत्वायोगात् आह च मूलटीकाकार— चरमा अनन्तगुणा यस्मात् भव्या अपि तादृशाः भावनीयं सुगमं

गौतम ! चरमो अनादिकः, सपर्यवसितः । अचरमो द्विविध —अनादिको वा अपर्यवसितः सादिरपर्यवसितः । इत्यादि नास्त्यन्तरम् । अल्पबहुत्व-सूत्रयोः अचरमा चरमा अनन्तगुणा । समाप्तं च चरमद्वारं ।

सूत्राणां विषयविभाग' इति । सम्प्रत्युपसंहारमाह— सत्त दुविहा' ते एते त्रिविधा सर्वजीवा अत्र कथंचिद्विविधवक्तव्यतामग्रहणिगाथा—

सिद्धसइंदियकाए जोए वेए कसायलेसा य ।
नाणुवओगाहारा भाससरीरी य चरमा य ॥१॥
(वत्तिकारो मलयगिरि)

हिन्दी-भावार्थ

अथवा सर्वजीव दो प्रकार के कहे गए हैं। जैसेकि—चरम और अचरम।

अनगार गौतम बोले—भदन्त ! चरम जीव चरमत्वरूप से कब तक रहते हैं ?

भगवान महावीर ने कहा—गौतम ! चरम जीव अनादि-सान्त होते हैं। अचरम जीव दो प्रकार के होते हैं जैसेकि—अनादि अनन्त और सादि-अनन्त। दोनों प्रकार के जीवों का अन्तरकाल नहीं होता है। इन जीवों का अल्पबहुत्व इस प्रकार है—

सबसे कम अचरम जीव होते हैं और चरम जीव इन से अनन्त गुण अधिक माने गए हैं।

इस प्रकार सर्वजीवों की व्याख्या करने वाला प्रकरण समाप्त होता है।

परिशिष्ट नं० २

सत्यार्थ में परमात्मा की अनादता–

जैनधर्म का सिद्धान्त है कि कर्मों का सर्वथा नाश करके और मुक्ति को प्राप्त कर लेता है परमात्मा बन जाता है, और फिर सदा के लिए मुक्ति में ही वह विराजमान रहता है, उसमें कभी शामिल नहीं जाता है। दूसरे दर्शनों में आत्मा की मुक्ति में परमात्मा आदि अनन्त है। परमात्म स्वरूप को आत्मा ने प्राप्त किया है इस लिए वह सादि है और परमात्मस्वरूप उस का गुण से भिन्न नहीं रहता, उस से कभी वह च्युत नहीं होता इसलिए वह अनन्त है। परमात्मा की इस अनन्तता को लेकर कुछ, मत आदि पर कई तरह से ऊटपटांग आक्षेप करते हैं। वे कहते हैं कि जैनधर्म का परमात्मा बंधा है मुक्ति की कैद में वह सदा के लिए पड़ा रहता है इसलिए वह बद्ध है उसे स्वतन्त्र नहीं कहा जा सकता। आक्षेपों का ऐसा कहना सरासर सर्वथा भ्रान्तिपूर्ण है क्योंकि परमात्मा का अपने स्वरूप में स्थिर रहना निजस्वभाव में रमण करना उसकी बद्धता या परतन्त्रता का कारण नहीं कहा जा सकता। बद्धता या परतन्त्रता का कारण परवशता होता है। स्वभाव स्थिरता को कभी बद्धता या परतन्त्रता का रूप नहीं दिया जा सकता। यदि केवल स्वभाव स्थिरता को ही बद्धता का प्रतीक मान लिया जायगा फिर तो संसार का कोई भी तत्त्व स्वतन्त्र नहीं कहा जा सकता। क्योंकि वस्तु का अपना कोई न

काइ स्वभाव अवश्य होता है और उस मे वह अवस्थित भी रहता है। वदिकदशनसम्मत परमात्मा को ही लें लें, वदिकदशन के विश्वासानुसार वह जगत का निमाण करता है। तो 'जगत का निमाण करना परमात्मा का स्वभाव बन जाता है। वदिकदशन के अनुसार जगत का निर्माण परमात्मा द्वारा ही होता है इस लिए अपने स्वभाव म स्थिर होन स उस जगत्कर्ता परमात्मा को भी बद्ध या परतन्त्र मानना पडेगा। पर जगतकर्ता परमात्मा की बद्धता वदिकदशन स्वय स्वीकार नहीं करता है। वस्तुस्थिति भी यही है। स्वभाव स्थिर किसी एक तत्त्व पर बद्ध या परतन्त्र शब्द का प्रयोग नही हुआ करता। अत सत्ता के लिए मुक्ति म विराजमान रहने के कारण जनदशन के परमात्मा को भी बद्ध या परतन्त्र नही कहना चाहिए और नाही एसा समझना चाहिए।

इसके अलावा वदिक ग्रथो म भी परमात्मा की अनन्तता को प्रकारान्तर म स्वीकार किया गया है। यजुर्वेद म एस अनेकों मत्र उपलब्ध होते है जो स्पष्ट रूप से परमात्मा की अनन्तता को अभिव्यक्त कर रहे हैं। पाठकों की जानकारी के लिए हम यजुर्वेद क दो मन्त्रों को यहां उद्धृत करते हैं। वे मन्त्र ये हैं—

*एतावानस्य महिमातो ज्यायाश्च पूरुष ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृत दिवि ॥
—यजुर्वेद अ० ३१, मन्त्र ३

* वदिक यन्त्रालय अजमेर से मुद्रित तृतीयावृत्ति विक्रम सम्वत् १९६९ पृष्ठ १०४२

इस का भावार्थ करते हुए श्री दयानन्द सरस्वती लिखते हैं कि यह सब सूर्य चन्द्र आदि लोक-लोकान्तर चराचर जितना जगत है, वह सब विचित्र विचित्र रचना के अनुमान से परमेश्वर के महत्त्व को सिद्ध कर उत्पत्ति स्थिति और प्रलय रूप से तीनों काल में घटने बढ़ने से भी परमेश्वर के एक-एक चतुर्थांश में ही रहता है किन्तु इस ईश्वर के साथ अन्त वा भी अवधि का नहीं पाता और इस ईश्वर के सामर्थ्य के तीन अंश अपने अविनाशी मोक्षस्वरूप में सदैव रहते हैं। इस कथन से उस ईश्वर का अनन्तपन नहीं बिगड़ता किन्तु जगत की अपेक्षा उस का महत्त्व और जगत का न्यूनत्व जाना जाता है।

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुष पादोऽस्येहा भवत्पुन ।
ततो विष्वङ व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥

—यजुर्वेद अ० ३१ मन्त्र ४

श्री दयानन्द सरस्वती ने इस मन्त्र का भावार्थ इस प्रकार किया है—

यह पूर्वोक्त परमेश्वर कार्यजगत् में पृथक् तीन अंश से प्रकाशित हुआ एक अंश अपने सामर्थ्य से सब जगत का बार बार उत्पन्न करता है पीछे उस चराचर जगत में व्याप्त हो कर स्थित है। (पृष्ठ १०४३)

यजुर्वेद के इन मन्त्रों में कहा गया है कि परमात्मा के तीन अंश अपने अविनाशी मोक्षस्वरूप में सदैव रहते हैं। यजुर्वेद का यह वर्णन जनदर्शनसम्मत परमात्मा की अनन्तता के साथ स्पष्ट रूप से मेल खा रहा है। यह सत्य है कि जनदर्शन यजुर्वेद की भांति परमात्मा के चार अंश नहीं मानता है किन्तु वह परमात्मा का जगत्कर्तृत्व स्वीकार

कोई स्वभाव अवश्य होता है और उस में वह अवस्थित भी रहता है। वदिकदर्शनसम्मत परमात्मा को ही लें तो वदिकदर्शन के विश्वासानुसार वह जगत का निर्माण करता है। तो 'जगत का निर्माण करना परमात्मा का स्वभाव बन जाता है। वदिकदर्शन के अनुसार जगत का निर्माण परमात्मा द्वारा हो होता है इस लिए अपने स्वभाव में स्थिर होने से उस जगत्कर्ता परमात्मा को भी बद्ध या परतन्त्र मानना पड़ेगा। पर जगत्कर्ता परमात्मा की बद्धता वदिकदर्शन स्वय स्वीकार नहीं करता है। वस्तुस्थिति भी यही है। स्वभाव स्थिर किसी एक तत्त्व पर बद्ध या परतन्त्र शब्द का प्रयोग नहीं हुआ करता। अत सत्ता के लिए मुक्ति में विराजमान रहने के कारण जनदर्शन के परमात्मा को भी बद्ध या परतन्त्र नहीं कहना चाहिए और नाही ऐसा समझना चाहिए।

इसके अलावा वदिक ग्रन्थों में भी परमात्मा की अनन्तता को प्रकारान्तर से स्वीकार किया गया है। यजुर्वेद में ऐसे अनेक मन्त्र उपलब्ध होते हैं जो स्पष्ट रूप से परमात्मा की अनन्तता को अभिव्यक्त कर रहे हैं। पाठकों की जानकारी के लिए हम यजुर्वेद के दो मन्त्रों को यहां उद्धृत करते हैं। वे मन्त्र ये हैं—

* एतावानस्य महिमातो ज्यायाश्च पूरुष ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृत दिवि ॥

—यजुर्वेद अ० ३१, मन्त्र ३

---

* वदिक यन्त्रालय अजमेर से मुद्रित तृतीयावृत्ति विक्रम सम्वत् १९६९ पृष्ठ १०४२

इस का भावार्थ करते हुए श्री दयानन्द सरस्वती लिखते है कि यह सब सूर्य चन्द्र आदि लोक-लोकान्तर चराचर जितना जगत है, वह सब चित्र विचित्र रचना के अनुमान से परमेश्वर के महत्त्व को सिद्ध कर उत्पत्ति स्थिति और प्रलय रूप से तीनों काल में घटने बढ़ने से भी परमेश्वर के एक एक चतुर्थांश में ही रहता है किन्तु इस ईश्वर के चौथे अंश को भी अवधि को नही पाता और इस ईश्वर के सामर्थ्य के तीन अंश अपने अविनाशी मोक्षस्वरूप में सदैव रहते है। इस कथन से उस ईश्वर का अनन्तपन नहीं बिगड़ता किन्तु जगत की अपेक्षा उस का महत्त्व और जगत का न्यूनत्व जाना जाता है।

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुष पादोऽस्येहा भवत्पुन ।

ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥

— यजुर्वेद, अ० ३१ मन्त्र ४

श्री दयानन्द सरस्वती ने इस मन्त्र का भावार्थ इस प्रकार किया है—

यह पूर्वोक्त परमेश्वर कार्यजगत् से पृथक् तीन अंश में प्रकाशित हुआ एक अंश अपने सामर्थ्य से सब जगत को बार बार उत्पन्न करता है पीछे उस चराचर जगत में व्याप्त हो कर स्थित है। (पृष्ठ १०४३)

यजुर्वेद के इन मन्त्रों मे कहा गया है कि परमात्मा के तीन अंश अपने अविनाशी मोक्षस्वरूप में सदैव रहते है। यजुर्वेद का यह वर्णन जैनदर्शनसम्मत परमात्मा की अनन्तता के साथ स्पष्ट रूप से मेल खा रहा है। यह सत्य है कि जैनदर्शन यजुर्वेद की भांति परमात्मा के चार अंश नहीं मानता है और नाही वह परमात्मा का जगत्कर्तृत्व स्वीकार करता है।

किन्तु यजुर्वेद के मन्त्रों द्वारा प्रस्तुत में हम इतना ही व्यक्त करना चाहते हैं कि यजुर्वेद में भी परमात्मा को अनन्त माना गया है और यजुर्वेदसम्मत परमात्मा के तीन अंश अविनाशी मोक्ष में सदा रहते हैं वे कभी वहां से च्युत नहीं हो पाते। जब यजुर्वेदसम्मत परमात्मा की अनन्तता उसे बद्ध नहीं होने देती, उसे स्वतन्त्र बनाए रखती है तो जैनदर्शन सम्मत परमात्मा की अनन्तता उसे बद्ध या परतन्त्र या कर्मों के वश में बना सकती है? उत्तर स्पष्ट है—कभी नहीं।

गीता में अकर्तृत्ववाद—

जैनदर्शन परमात्मा को जगत का निर्माता भाग्यविधाता, तथा कर्मफलप्रदाता स्वीकार नहीं करता है। जैनदर्शन की यह मान्यता सर्वथा युक्तियुक्त और तर्कसंगत है। इस की छाया हमें भगवद्गीता में भी मिलती है। गीता के पांचवें अध्याय का पांचवां और छठा श्लोक देखिए—

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभु।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते॥

अर्थात्—ईश्वर जगत का निर्माता नहीं है जीवों के कर्मों की रचना नहीं करता है और नाही वह कर्मफल का प्रदाता है। प्रकृति के स्वभाव से ही यह सब बातें हो रही हैं।

नादत्ते कस्यचित्पापं, न चैव सुकृतं विभु।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं, तेन मुह्यन्ति जन्तवः॥

अर्थात्—ईश्वर किसी को पाप और पुण्य नहीं लगाता है, ज्ञान अज्ञान से आवृत हो रहा है इसी कारण से जीव मोह को प्राप्त हो रहे हैं।

—o—